

August 2021

*Bulletin of Sri Aurobindo*  
*International Centre of Education*

श्रीअरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-केन्द्र पत्रिका

(हिन्दी-विभाग)

अगस्त २०२१



श्रीअरविन्द आश्रम  
पॉण्डिचेरी, भारत

## बुलेटिन अगस्त २०२१

### विषय-सूची

#### 'पृथ्वी पर अतिमानसिक अभिव्यक्ति'

अतिमानस तथा दिव्य जीवन	श्रीअरविन्द ३
एक युवा कप्तान के नाम पत्र	'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६ ७
सनातन धर्म	श्रीअरविन्द १३
२५ मई १९७० का वार्तालाप	'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५ १७
हृदय की पवित्रता	श्रीअरविन्द १९
सच्चा अभ्यास	'श्रीमातृवाणी', खण्ड १० २०
पूर्ण आत्मदान	श्रीअरविन्द २१
शरीर की साधना	'श्रीमातृवाणी' से २२
श्रीअरविन्द के उत्तर (८१)	२४

### ‘पृथ्वी पर अतिमानसिक अभिव्यक्ति’

अपने अन्तिम गद्य-लेखनों में श्रीअरविन्द ने *Bulletin of Physical Education*—शारीरिक शिक्षण की पत्रिका—(जिसका बाद में नाम बदल कर *Bulletin of Sri Aurobindo International Centre of Education*—श्रीअरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षाकेन्द्र-पत्रिका—कर दिया गया था) के लिए आठ लेख लिखे थे। यह त्रैमासिक पत्रिका फ़रवरी १९४९ में शुरू हुई थी। ये लेख १९४९ तथा १९५० के अंकों में प्रकाशित हुए थे। १९५० में श्रीअरविन्द के शरीर-त्याग के साथ यह कड़ी टूट गयी। बाद में १९५२ में *पृथ्वी पर अतिमानसिक अभिव्यक्ति* के नाम से यह पुस्तक-रूप में प्रकाशित हुई।

## अतिमानस तथा दिव्य जीवन

जो दिव्य जीवन में प्रवेश करते और इसे अधिकृत कर लेते हैं उन्हें वह आरम्भ में सत्य-चेतना तथा एक वर्धनशील और अन्त में सम्पूर्ण अधिकार दे देता है और वह सब भी दे देता है जिसे वह अपने साथ वहन करता है। यह अपने साथ लाता है भगवान् की सिद्धि स्वयं अपने अन्दर और ‘प्रकृति’ में भी। भगवान् का जिज्ञासु जिसकी तलाश कर रहा है—जैसे-जैसे वह आध्यात्मिक पूर्णता की ओर बढ़ेगा—वह सब उसकी आत्मा और उसके जीवन में सिद्ध हो जायेगा। वह परात्पर सद्बस्तु के प्रति जागरूक हो जायेगा, आत्मानुभूति में परम सत्, चित्, आनन्द को प्राप्त कर लेगा और सच्चिदानन्द के प्रति तदात्म हो जायेगा। वह वैश्व सत्ता तथा वैश्व प्रकृति के साथ तदात्म हो जायेगा : वह विश्व को अपने अन्दर, स्वयं अपनी वैश्व चेतना में धारण कर लेगा और अपने-आपको सभी सत्ताओं के साथ एकात्म अनुभव करेगा। वह सबमें स्वयं को और स्वयं में सबको देखेगा। वह उस आत्मन् के साथ संयुक्त तथा तदात्म हो जायेगा जो समस्त अस्तित्व बन गया है। वह सर्व-सौन्दर्यमय का सौन्दर्य, और सर्व-विस्मयजनक का चमत्कार देखेगा। अन्त में वह ब्रह्मानन्द में प्रवेश कर जायेगा और स्थायी रूप से इसी में निवास करेगा, और इस सब के लिए उसे जगत् के त्याग अथवा कुछ आत्म-निर्वापक निर्वाण के आध्यात्मिक व्यक्तित्व के विलोपन में छल्लाँग लगाने की आवश्यकता नहीं होगी। आत्मन् के साथ-साथ प्रकृति में भी वह भगवान् को सिद्ध कर सकता है। भगवान् की प्रकृति ही है—‘ज्योति’, ‘शक्ति’ तथा ‘आनन्द’। वह दिव्य प्रकाश, शक्ति तथा आनन्द को अपने ऊपर और अन्दर अवतरित होते हुए, अपनी प्रकृति के प्रत्येक तन्तु को, अपनी सत्ता की प्रत्येक कोषिका तथा अणु को परिपूरित करते हुए, अपनी आत्मा, मन, प्राण तथा शरीर को आप्लावित करते हुए, असीम सागर के समान उसे चारों ओर से घेरते हुए और विश्व को परिपूरित करते हुए, अपनी समस्त संवेदना, बोध तथा अनुभूति को व्याप्त करते हुए, अपने सम्पूर्ण जीवन को वास्तव

में और नितान्त रूप से दिव्य बनाते हुए अनुभव कर सकता है। यह सब और अन्य सब जो आध्यात्मिक चेतना उसे दे सकती है—दिव्य जीवन उसे दे देगा जब यह अपने चरम समापन तथा पूर्णता तक पहुँच जायेगा और तब अतिमानसिक सत्य-चेतना उसकी समस्त सत्ता में परिपूरित हो जायेगी। परन्तु इसके पहले भी यदि अतिमानस उस पर एक बार उतर चुका है और उसके अस्तित्व की दिशा प्राप्त कर चुका है, वह इन सबका कुछ अंश प्राप्त कर सकता है, उसमें संवर्धित हो सकता है, उसमें निवास कर सकता है। भगवान् के साथ उसके सभी प्रकार के सम्बन्ध होंगे। भागवत ज्ञान, भागवत कर्म तथा भगवान् के प्रति भक्ति की त्रयी उसके अन्तस्तल में उद्घाटित होगी तथा उसकी समस्त सत्ता तथा प्रकृति के नितान्त आत्मदान तथा समर्पण की ओर अग्रसर होगी। वह भगवान् में भगवान् के साथ निवास करेगा और भगवान् को अधिकृत कर लेगा। और जैसा कि कहा जाता है, यहाँ तक कि अपने समस्त पृथक् व्यक्तित्व को भूल कर उसमें छलौंग लगा लेगा, परन्तु आत्म-विलोपन में अपने को लीन नहीं करेगा। भागवत प्रेम तथा प्रेम का समस्त माधुर्य, सम्पर्क के परमानन्द के साथ-साथ एकता का परमानन्द तथा एकता में भिन्नता का परमानन्द उसके साथ रहेगा। अनन्त की अनुभूति की सभी अनन्त श्रेणियाँ तथा अनन्त के आलिंगन में सान्त के समस्त आह्लाद उसे सुलभ होंगे।

अतिमानस का अवतरण उस व्यक्ति में दिव्य जीवन की समस्त सम्भावनाएँ ले आयेगा जो इसे ग्रहण कर लेता और सत्य-चेतना से परिपूर्ण हो जाता है। यह सिर्फ पहले से ही आध्यात्मिक जीवन की मान्यताप्राप्त उस विशिष्ट अनुभूति को ही समाविष्ट नहीं करेगा बल्कि उसे भी समाविष्ट करेगा जिसे हम अभी उस कोटि से बाहर रखते हैं परन्तु जिसमें दिव्यीकरण की क्षमता होती है। यह उस सब पार्थिव प्रकृति तथा पार्थिव जीवन को भी समाविष्ट करेगा जिसे अतिमानस के स्पर्श से रूपान्तरित किया जा सकता है और आत्मन् के अभिव्यक्त जीवन में स्वीकृत भी किया जा सकता है। क्योंकि पृथ्वी पर दिव्य जीवन को कोई ऐसी वस्तु नहीं होना चाहिये जो सामान्य पार्थिव अस्तित्व से अलग-थलग हो और उससे उसका कोई लेना-देना ही न हो। यह मानव-सत्ता तथा मानव-जीवन को अपनायेगा, जो कुछ रूपान्तरित किया जा सकता है उसे रूपान्तरित करेगा, जिसका आध्यात्मीकरण किया जा सकता है उसका आध्यात्मीकरण करेगा, शेष पर अपना प्रभाव डालेगा तथा एक मौलिक या उत्थापक परिवर्तन आरोपित करेगा, वैश्व तथा व्यक्तिगत के मध्य एक गहनतर सम्पर्क स्थापित करेगा, आदर्श पर आध्यात्मिक सत्य आरोपित करेगा जिसकी वह ज्योतिर्मय छाया है तथा एक महत्तर तथा उच्चतर जीवन की ओर ले जाने में इसकी मदद करेगा। यह मन को चिन्तन और संकल्प के एक दिव्यतर प्रकाश की ओर उत्थापित करेगा, प्राण को गहनतर तथा सत्यतर भावना और कर्म की ओर, विशालतर शक्ति की ओर, ऊँचे उद्देश्य तथा प्रयोजन की ओर ऊपर उठायेगा। जो कुछ अपनी ही सत्ता के पूर्ण सत्य की ओर नहीं उठाया जा सकता उसे उस पूर्णता के निकटतर ले आयेगा। जो कुछ इस परिवर्तन के लिए भी तैयार नहीं है तब जब भी इसका अपूर्ण विकास आत्मपूर्णता के लिए तैयार हो जायेगा, यह उसकी सम्भावना का द्वार खोल देगा। यहाँ तक कि यदि शरीर

### बुलेटिन अगस्त २०२१

अतिमानस का स्पर्श सहन कर सके तब यह अपने सत्य के प्रति अधिक सजग हो जायेगा —क्योंकि शरीर की अपनी एक चेतना होती है और अपनी वास्तविक अवस्था तथा क्रिया का अपना सहज बोधात्मक सत्य होता है। यहाँ तक कि इसके कोषाणुओं तथा उनकी बनावट में एक प्रकार का प्रच्छन्न गुह्य ज्ञान होता है जो एक दिन सचेतन हो सकता है तथा भौतिक शरीर के रूपान्तरण में योगदान दे सकता है। पार्थिव प्रकृति में तथा पार्थिव चेतना में एक जागृति अनिवार्य है जो यदि वास्तविक प्रारम्भ नहीं तो कम-से-कम एक नये तथा दिव्यतर जगत् की व्यवस्था की ओर प्रभावकारी तैयारी तथा इसके क्रमविकास के पहले चरण हो सकती है।

यह दिव्य जीवन की परिपूर्णता होगी जिसे अतिमानस का अवतरण तथा सत्य-चेतना की कार्यप्रणाली प्राणी की समस्त प्रकृति को अपने नियन्त्रण में लेकर उन सबमें लायेगी जो अपने-आपको इसकी शक्ति या प्रभाव के प्रति उद्घाटित कर सकेंगे। यहाँ तक कि इसका प्रथम तात्कालिक प्रभाव उन सब पर होगा जो सत्य-चेतना में प्रवेश करने में तथा प्रकृति की सभी गतियों को अतिमानसिक सत्य, वैचारिक सत्य, संकल्प के सत्य, भावनाओं, कर्मों के सत्य, समस्त सत्ता की सच्ची अवस्थाओं में अधिक-से-अधिक परिवर्तित करने में समर्थ हैं। यहाँ तक कि शरीर में भी अन्ततोगत्वा यह दिव्यीकरण परिवर्तन लायेगा। उनके लिए जो अपने को इस प्रकार उद्घाटित कर सकेंगे और उद्घाटित बने रहेंगे, इस विकास की कोई सीमा न होगी और न कोई आधारभूत कठिनाई ही होगी; क्योंकि सभी कठिनाइयाँ उस अतिमानसिक प्रकाश तथा शक्ति के दबाव से विलीन हो जायेंगी जो ऊपर से मन, प्राण-शक्ति तथा शरीर में प्रवाहित होंगी। किन्तु अतिमानसिक अवतरण को उनके लिए सीमित होने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी जो स्वयं को इस प्रकार पूर्ण रूप से उद्घाटित कर देंगे तथा अतिमानसिक रूपान्तरण के लिए भी इसे सीमित होने की आवश्यकता नहीं है। मानसिक सत्ता का भी मानसिक प्रकृति की उन्मुक्त तथा पूर्ण की गयी परिधि के अन्तर्गत थोड़ा-बहुत या गौण रूपान्तरण हो सकता है। मानव-मन, अभी जैसा है, एक सीमित मन है, अपूर्ण है। हर क्षण यह सत्य से सब प्रकार के विचलनों के प्रति या उसे चूक जाने के प्रति खुला रहता है। सभी प्रकार की भूलों, सम्पूर्ण मिथ्यात्व के बहकावों तथा प्रकृति की विकृति के प्रति उद्घाटित रहता है। यह ऐसा मन है जो अन्धा बन गया है तथा निश्चेतना और अज्ञान की ओर उन्मुख रहता है और शायद ही ज्ञान तक पहुँच पाता है। इसकी बुद्धि उच्चतर ज्ञान की व्याख्या ऐसे अव्यावहारिक तथा गौण प्रतीकों में करती है जो उच्चतर अन्तर्भासों के सन्देशों को अनिश्चित तथा विवादास्पद बना देते हैं। ऐसे मन में भी एक सच्चे मन का उद्भव हो सकता है जो मुक्त हो और अपने तथा अपने यन्त्रों को स्वतन्त्र करने तथा उनमें अधिकतम पूर्णता लाने में सक्षम हो। उनमें एक ऐसे प्राण का भी उद्भव हो सकता है जो उन्मुक्त और ज्योतिर्मय मन द्वारा शासित हो। उसके शरीर पर भी ऐसा प्रभाव हो सकता है कि वह ज्योति का प्रत्युत्तर दे सके और वह सब कर सके जो मुक्त मन और संकल्प की माँग है। यह परिवर्तन न सिर्फ़ कुछ लोगों में, बल्कि सम्पूर्ण मानवजाति में सामान्य रूप से घटित हो सकता है। यह सम्भावना, यदि

परिपूरित हो जाती है, तब इसका अर्थ यह होगा कि मनुष्य का पूर्णता का सपना, इसकी अपनी पूर्णता, इसकी शुद्धीकृत तथा प्रबुद्ध प्रकृति की पूर्णता, जीवन और कर्म की सभी विधियों की पूर्णता का सपना अब मात्र सपना नहीं बरन् एक ऐसा सत्य बन जायेगा जिसे वास्तविक बनाया जा सके और सम्पूर्ण मानवता को इसकी निश्चेतना तथा अज्ञान की पकड़ से ऊपर उठाया जा सके। मनोमय सत्ता के जीवन को अतिमानस के जीवन के साथ सुसमञ्जित किया जा सकता है जो तब इससे ऊपर उच्चतम कोटि का होगा, और तब वह सत्य-चेतना का ही विस्तार तथा योजक बन जायेगा—दिव्य जीवन का ही एक अंग और प्रान्त। यह स्पष्ट है कि यदि अतिमानस आ जाता है तथा अतिमानसिक सत्ता की व्यवस्था पार्थिव प्रकृति में प्रधान सिद्धान्त के रूप में स्थापित हो जाती है, जैसा कि अभी मन मार्गदर्शक सिद्धान्त है—किन्तु पार्थिव जीवन पर पूर्ण और सुनिश्चित अधिकार के साथ—तब, उनके स्तर पर और उनकी स्वाभाविक सीमाओं के अन्दर जिनमें मन अपनी अपूर्णता के कारण रूपान्तरण की क्षमता नहीं रखता—मानव-जीवन में एक महान् परिवर्तन, यदि यह रूपान्तरण तक न भी जाये, अवश्यम्भावी होगा।

अब यह विचार करना है कि इस सम्भावना के मार्ग में क्या बाधाएँ आ सकती हैं। खासकर वे बाधाएँ जो पार्थिव व्यवस्था की प्रकृति तथा इसके कार्य के द्वारा क्रमिक विकास के एक क्षेत्र के रूप में—जिसमें हमारी मानवता एक चरण है—थोपी गयी हैं। यह तर्क दिया जा सकता है कि इसकी यह अपूर्णता क्रमिक विकास की एक आवश्यकता है। तब अतिमानस अपनी उपस्थिति द्वारा तथा चीजों पर अधिकार के द्वारा इस कठिनाई पर क्रमिक विकास के सिद्धान्त का ध्यान रखते हुए कहाँ तक विजय पा सकता है? और क्या यह अज्ञान तथा निश्चेतना द्वारा आरोपित गलत तथा अज्ञानपूर्ण व्यवस्था को संशोधित नहीं कर पायेगा और इसके स्थान पर एक ऐसी समुचित क्रम-व्यवस्था—जिसमें पूर्णता तथा दिव्यीकरण सम्भव हो—स्थापित नहीं कर पायेगा? निश्चय ही व्यक्ति के लिए मार्ग खुला रहेगा। मानवों का जो भी समूह संयुक्त रूप से पूर्ण वैयक्तिक तथा सामूहिक जीवन के लिए प्रयास करेगा या दिव्य जीवन की अभीप्सा करेगा, उसे उसकी अभीप्सा की पूर्ति में मदद दी जायेगी: तब, कम-से-कम अतिमानस तो अपना अल्पतम परिणाम लायेगा। परन्तु महानतर सम्भावना भी है और वह पूरी मानवता को भी दी जा सकती है। तब हमें यह विचार करना है कि मानवजाति के लिए अतिमानस का अवतरण क्या अर्थ रखता है तथा सम्पूर्ण जीवन के लिए तथा मानवजाति के क्रम-विकासात्मक भविष्य तथा उसकी नियति के लिए इसका क्या परिणाम होगा या इससे क्या आशा है।

बुलेटिन अगस्त २०२१

## एक युवा कप्तान के नाम पत्र

(ये पत्र शारीरिक-शिक्षण-विभाग की एक युवा कप्तान के नाम हैं।)

मधुर माँ,

हमें आपकी और श्रीअरविन्द की पुस्तकें कैसे पढ़नी चाहियें ताकि वे मन द्वारा समझे जाने की जगह हमारी चेतना में पैठ सकें?

मेरी पुस्तकों को पढ़ना कठिन नहीं है क्योंकि वे बहुत ही सरल भाषा में, लगभग बोल-चाल की भाषा में लिखी गयी हैं। उनसे सहायता लेने के लिए इतना काफ़ी है कि उन्हें ध्यान और एकाग्रता के साथ, सद्भावना के आन्तरिक मनोभाव और जो कुछ सिखाया जा रहा है उसे ग्रहण करने और उसे जीने की इच्छा के साथ पढ़ा जाये।

श्रीअरविन्द ने जो लिखा है उसे समझना ज़्यादा कठिन है क्योंकि अभिव्यञ्जना बहुत बौद्धिक है और भाषा कहीं अधिक साहित्यिक और दार्शनिक। दिमाग को इसे सचमुच समझने के लिए काफ़ी तैयारी की ज़रूरत होती है और आम तौर पर उस तैयारी में समय लगता है, जब तक कि व्यक्ति के अन्दर सहज अन्तर्भासात्मक क्षमता की प्रतिभा न हो।

बहरहाल, मैं हमेशा यह सलाह देती हूँ कि एक समय में थोड़ा-सा पढ़ो, मन को जितना बन सके उतना निश्चल और स्थिर रखो, समझने की कोशिश न करो, लेकिन जहाँ तक सम्भव हो सिर को नीरव-निश्चल रखने की कोशिश करो, जो तुम पढ़ रहे हो उसमें जो शक्ति है उसे अपने अन्दर गहराई में प्रवेश करने दो। स्थिरता और नीरवता में प्राप्त की हुई यह शक्ति आलोकमय बनाने का कार्य करेगी और ज़रूरत हो तो मस्तिष्क में समझने के लिए आवश्यक कोषाणुओं का निर्माण करेगी। इस तरह, जब हम उसी चीज़ को कुछ महीनों के बाद दोबारा पढ़ते हैं तो देखते हैं कि वहाँ पर अभिव्यक्त किया गया विचार बहुत अधिक स्पष्ट और निकटतर है, यहाँ तक कि कई बार तो बिलकुल परिचित मालूम होता है।

ज़्यादा अच्छा यह है कि नियमित रूप से और यदि सम्भव हो तो बँधे हुए समय पर, थोड़ा-थोड़ा पढ़ा जाये। यह मस्तिष्क की ग्रहणशीलता को ज़्यादा सरल बना देता है।

२ नवम्बर १९५९

मधुर माँ,

आपके भिन्न-भिन्न चित्रों के सामने बैठ कर किया गया ध्यान, भिन्न-भिन्न अनुभूतियाँ क्यों देता है?

क्योंकि हर चित्र एक अलग पहलू का और कभी-कभी मेरे अलग-अलग व्यक्तित्व का निरूपण

करता है; और किसी चित्र पर एकाग्र होकर व्यक्ति उस विशेष पहलू या अलग व्यक्तित्व के साथ सम्पर्क साधता है जो उस चित्र में आया है या वह चित्र जिसे प्रतिबिम्बित करता है।

चित्र सच्ची और ठोस उपस्थिति होता है, परन्तु आंशिक और सीमित।

४ नवम्बर १९५९

मधुर माँ,

*चित्र आंशिक और सीमित क्यों होता है?*

क्योंकि चित्र केवल क्षण-भर का बिम्ब पकड़ता है, व्यक्ति के एक क्षण के रूप-रंग को, और वह रूप-रंग जिस गुजरती हुई मनोवैज्ञानिक स्थिति और आंशिक आत्मिक अवस्था को प्रकट करता है, उसे पकड़ता है। चाहे चित्र यथासम्भव सर्वोत्तम स्थिति में, किसी विरल क्षण में, कुछ विशेष अभिव्यक्त करते हुए अवसर पर लिया गया हो, फिर भी वह किसी भी हालत में सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रकट नहीं कर सकता।

५ नवम्बर १९५९

मधुर माँ,

*अवचेतना और निश्चेतना ठीक-ठीक हैं क्या?*

निश्चेतना प्रकृति का वह भाग है जो इतना अधिक अँधेरा और सोया हुआ है कि वह पूरी तरह से चेतनाविहीन मालूम होता है जैसे पत्थर, खनिज-लोक। वहाँ चेतना पूरी तरह से निष्क्रिय और छिपी हुई रहती है। पृथ्वी का इतिहास इस निश्चेतना से ही शुरू होता है।

हम भी इसे अपने अन्दर, अपने शरीर के तत्त्वों में लिये रहते हैं क्योंकि हमारे शरीर के तत्त्व वही हैं जो पृथ्वी के हैं।

लेकिन विकास द्वारा यह सुषुप्त और छिपी हुई चेतना धीरे-धीरे वनस्पति और पशु-जगत् में से होकर जागती है और उनमें अवचेतना का आरम्भ होता है। यह अवचेतना मनुष्य में मन के आविर्भाव द्वारा अपने चरम बिन्दु —चेतना—पर पहुँचती है। इसी भाँति यह चेतना भी प्रगतिशील है और जिस अनुपात में मनुष्य विकसित होता है वह अतिचेतन में बदल जाती है। अतः, हम भी अपने अन्दर अवचेतना को लिये रहते हैं जो पशु के साथ हमारा नाता जोड़ती है और अतिचेतन को भी, जो हमारी आशा और भावी सिद्धि का आश्वासन है।

७ नवम्बर १९५९

मधुर माँ,

*जब हम खेल के मैदान में आपके संगीत के साथ ध्यान करते हैं तब हमें क्या*



## बुलेटिन अगस्त २०२१

करने की कोशिश करनी चाहिये?

इस संगीत का लक्ष्य होता है कुछ गहरी भावनाओं को जगाना।

उसे सुनते समय तुम्हें अपने-आपको जितना सम्भव हो उतना नीरव और निश्चेष्ट बनाना चाहिये। और अगर मानसिक नीरवता में सत्ता का कोई भाग साक्षी-भाव अपना सके जो प्रतिक्रिया किये बिना या भाग लिये बिना केवल अवलोकन करता हो तब भावों और भावनाओं पर पैदा होने वाले संगीत के प्रभाव को देखा जा सकता है और अगर वह गहरी निश्चलता और अर्द्ध-समाधि की अवस्था पैदा करता है तो यह बहुत अच्छी बात है।

१५ नवम्बर १९५९

मधुर माँ,

अधिमानस का काम क्या है?<sup>१</sup>

अधिमानस देवों का, भागवत मूल की ऐसी सत्ताओं का क्षेत्र है जिन्हें विश्व के विकास के निरीक्षण, निर्देशन और व्यवस्था का काम सौंपा गया है और अधिक विशेष रूप से, धरती के रूपायण के साथ-साथ उन्होंने उच्चतर लोकों की सहायता धरती के लिए लाने और मन के निर्माण तथा उसके उत्तरोत्तर आरोहण की अध्यक्षता करने के लिए सन्देशवाहकों और मध्यस्थों का काम किया है। सामान्यतः विभिन्न धर्मों की प्रार्थनाएँ अधिमानस के देवों के प्रति सम्बोधित होती हैं। बहुधा ये धर्म, विभिन्न कारणों से, इन देवों में से किसी एक को अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिए चुन कर परम देव में बदल लेते हैं।

व्यक्तिगत क्रमविकास में, अधिमानस के ऊपर, अतिमानस में उठ सकने और अपने-आपको उसकी ओर खोल सकने के पहले, व्यक्ति को अपने अन्दर अधिमानस के अनुरूप क्षेत्र और अधिमानसिक चेतना को विकसित करना होगा।

प्रायः सभी गुह्य पद्धतियाँ और तपश्चर्याएँ अधिमानस के विकास और उस पर प्रभुत्व को अपना लक्ष्य बनाती हैं।

२७ नवम्बर १९५९

मधुर माँ,

“अधिमानस के अनुरूप क्षेत्र” का अर्थ क्या है और हम उसे अपने अन्दर कैसे विकसित कर सकते हैं? “अधिमानस पर प्रभुत्व” का क्या मतलब है?

<sup>१</sup> यह और इसके बाद के तीन प्रश्न श्रीअरविन्द द्वारा ‘दिव्य जीवन’ में प्रयुक्त कुछ परिभाषाओं के बारे में हैं।

व्यक्तिगत सत्ता, सत्ता की ऐसी स्थितियों से बनी है जो वैश्व जगत्तों या लोकों के अनुरूप है। जैसे-जैसे सत्ता की ये आन्तरिक अवस्थाएँ विकसित होती जाती हैं वैसे-वैसे हम उन लोकों के बारे में सचेतन होते जाते हैं। यह चेतना दोहरी होती है, पहली मनोवैज्ञानिक और आत्मनिष्ठ, स्वयं अपने अन्दर, जो अपने-आपको विचारों, भावों, भावनाओं और संवेदनों के द्वारा व्यक्त करती है, दूसरी वस्तुनिष्ठ और मूर्त जिसमें व्यक्ति अपने शरीर की सीमाओं के परे जा सकता है ताकि विभिन्न वैश्व क्षेत्रों में घूम-फिर सके, उनके बारे में सचेतन होकर उनमें मुक्त रूप से क्रिया कर सके। इसे 'प्रभुत्व' कहते हैं। जब मैंने अधिमानस पर प्रभुत्व की बात की थी तो मेरा यही मतलब था।

यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि यह सब एक दिन, यहाँ तक कि एक वर्ष में भी नहीं हो पाता। यह प्रभुत्व, वह चाहे किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो—प्राणिक, मानसिक और अधिमानसिक—अध्यवसायपूर्ण प्रयास और बहुत अधिक एकाग्रता की माँग करता है। ये प्रभुत्व भौतिक जगत् के प्रभुत्व से अधिक आसान नहीं हैं; और हर एक जानता है कि अपना जीवन उचित रूप से चलाने के लिए एकदम से अनिवार्य चीज़ें सीखने में भी कितने समय और प्रयास की ज़रूरत पड़ती है, फिर "प्रभुत्व" की तो बात ही क्या है जो धरती पर सचमुच एक अपवादिक चीज़ है।  
२८ नवम्बर १९५९

मधुर माँ,

*अति प्रकृति या परा प्रकृति क्या है?*

परा प्रकृति वह प्रकृति है जो जड़ या भौतिक प्रकृति से—जिसे हम "प्रकृति" कहते हैं—श्रेष्ठतर है। लेकिन हम जिस प्रकृति को देखते, अनुभव करते और जिसका अध्ययन करते हैं, यह प्रकृति जो धरती पर हमारे जन्म से ही हमारा परिचित परिवेश रही है, वही एकमात्र प्रकृति नहीं है। एक प्राणिक प्रकृति होती है, एक मानसिक प्रकृति होती है, इसी तरह और भी होती हैं। सामान्य चेतना के लिए यही परा प्रकृति है।

बहुधा "नेचर" शब्द का उपयोग प्रकृति के पर्याय के रूप में किया जाता है, यानी पुरुष की क्रियाशील शक्ति। लेकिन तुम्हारे प्रश्न का अधिक यथार्थता के साथ उत्तर देने के लिए यह जानना ज़रूरी है कि श्रीअरविन्द ने 'अति प्रकृति' या परा प्रकृति का उपयोग किस प्रसंग में किया है।

१५ दिसम्बर १९५९

मधुर माँ,

*श्रीअरविन्द ने 'दिव्य जीवन' में लिखा है, "अभी तक कोई अधिमानसिक सत्ता या व्यवस्थित अधिमानसिक प्रकृति नहीं है, कोई अतिमानसिक सत्ता या व्यवस्थित*

बुलेटिन अगस्त २०२१

अतिमानसिक प्रकृति नहीं है जो हमारी सतह पर या हमारे सामान्य अन्तस्तलीय भागों में काम कर रही हो।” मधुर माँ, क्या अतिमानस के अवतरण के बाद भी ऐसा ही है?<sup>१</sup>

श्रीअरविन्द का मतलब है कि बस कुछ थोड़ी-सी अपवादिक सत्ताएँ ही हैं जो सामान्य मानवजाति की नहीं हैं, जिनमें सचेतन और व्यवस्थित अधिमानसिक सत्ता और अधिमानसिक जीवन हो, और इससे भी कम ऐसे लोग हैं जिनमें एक व्यवस्थित अतिमानसिक सत्ता और अतिमानसिक जीवन हो—अगर यह मान भी लिया जाये कि ऐसी सत्ताएँ हैं। निश्चय ही अभी हाल के धरती के वातावरण में अतिमानस के प्रथम तत्त्वों के अवतरण ने (जिसे अभी पूरे चार वर्ष भी नहीं हुए) वस्तुओं की इस स्थिति को बदला नहीं होगा।

हम अभी तक केवल तैयारी के काल में हैं।

१८ दिसम्बर १९५९

मधुर माँ,

भक्तियोग और ज्ञानयोग का मतलब क्या है?

ज्ञानयोग वह मार्ग है जो तुम्हें शुद्ध और निरपेक्ष सत्य की ऐकान्तिक खोज द्वारा भगवान् की ओर ले जाता है।

भक्तियोग वह मार्ग है जो सम्पूर्ण, समग्र और शाश्वत प्रेम द्वारा भगवान् के साथ ऐक्य की ओर ले जाता है।

श्रीअरविन्द के पूर्णयोग में ये दोनों कर्मयोग और आत्म-सिद्धि-योग के साथ मिल कर एकरूप समग्र बनाते हैं जिसकी परिणति होती है अतिमानसिक सिद्धि के योग में।

५ फ़रवरी १९६०

मधुर माँ,

“परम क्षमताएँ” कौन-सी हैं?

प्रसंग जाने बिना उत्तर देना कठिन है। यहाँ कौन-सी “परम क्षमताओं” की बात हो रही है? उस मनुष्य की क्षमताएँ जो अतिमानव होने के पथ पर है या वे जो यहाँ धरती पर प्रकट होने वाली अतिमानसिक सत्ता में होंगी?

पहले में वे क्षमताएँ हैं जो मनुष्य के अन्दर तब विकसित होती हैं जब वह उच्चतर मन

<sup>१</sup> २९ फ़रवरी १९५६ को माताजी के शब्दों में “धरती पर अतिमानस की अभिव्यक्ति हुई और तब धरती पर अतिमानसिक ज्योति, शक्ति और चेतना का अबाध प्रवाह आया।”

और अधिमान की ओर खुलता है और वह उन लोकों के द्वारा 'सत्य' का प्रकाश पाता है। ये क्षमताएँ परम सत्य की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति नहीं हैं बल्कि उसका अभिलेख या परोक्ष बिम्ब हैं। उनमें अन्तर्भास, पूर्व ज्ञान, तादात्म्य द्वारा ज्ञान तथा कुछ शक्तियों का समावेश होता है, उदाहरण के लिए, नीरोग करने वाली तथा कुछ हद तक परिस्थितियों पर अधिकारपूर्वक क्रिया करने वाली शक्तियों का।

अगर इसका संकेत अतिमानसिक सत्ता की परम क्षमताओं से है तो हम उसके बारे में बहुत कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि अभी तक हम इस बारे में जो कह सकते हैं वह ज्ञान के क्षेत्र की अपेक्षा कल्पना के क्षेत्र का अधिक होता है, क्योंकि अभी तक यह अतिमानसिक सत्ता धरती पर प्रकट नहीं हुई है।

२३ अप्रैल १९६०

मधुर माँ,

“मानव सत्ता के विभिन्न मनोवैज्ञानिक भाग” कौन-से हैं?

ये विभाजन मनमाने हैं। ये मानव प्रकृति के अध्ययन को सरल बनाने के लिए और विशेष रूप से आत्म-विकास और आत्म-संयम के विभिन्न तरीकों के लिए निश्चित आधार बनाने हेतु स्थापित किये गये हैं। इसीलिए हर दार्शनिक, शैक्षिक या यौगिक पद्धति का मानों अपना ही अलग विभाजन है जिसका आधार होता है उसके संस्थापक की अपनी अनुभूति। फिर भी, इन सब भेदों के बावजूद, एक प्रकार की परम्परा है जो विभिन्न परिभाषाओं के पीछे एक तात्त्विक सादृश्य बनाये रखती है। इस सादृश्य को इन चार शब्दों द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है : भौतिक, प्राण, मन, चैत्य या अन्तरात्मा।

श्रीअरविन्द ने इस विषय पर बहुत विस्तार से अपने लेखों में और 'योग-समन्वय' तथा 'गीता-प्रबन्ध' में लिखा है।

३० मई १९६०

मधुर माँ,

क्या भगवान् के बारे में ठीक धारणा बनाना सम्भव है?

भगवान् के बारे में कोई भी धारणा ठीक नहीं हो सकती क्योंकि धारणाएँ मानसिक हलचल हैं और कोई भी मानसिक क्रिया भगवान् को अभिव्यक्त करने-योग्य नहीं है।

केवल अनुभव द्वारा व्यक्ति उन्हें जान सकता है, और अनुभूति को शब्दों में अनूदित नहीं किया जा सकता।

२० जून १९६०

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. २६४-७२

बुलेटिन अगस्त २०२१

## सनातन धर्म<sup>१</sup>

बहुधा हम हिन्दू धर्म, सनातन धर्म की बातें करते हैं, किन्तु वास्तव में हममें से कम ही लोग यह जानते हैं कि यह धर्म क्या है। दूसरे धर्म मुख्य रूप से विश्वास, व्रत, दीक्षा और मान्यता को महत्त्व देते हैं, किन्तु सनातन धर्म तो स्वयं जीवन है, यह इतनी विश्वास करने की चीज़ नहीं है जितनी जीवन में उतारने की चीज़ है। यही वह धर्म है जिसे मानवजाति के कल्याण के लिए प्राचीन काल से इस प्रायद्वीप के एकान्तवास में सँजोया जाता रहा है। यही धर्म देने के लिए भारत उठ रहा है। भारतवर्ष, दूसरे देशों की तरह, अपने लिए ही या मज़बूत होकर दूसरों को कुचलने के लिए नहीं उठ रहा। वह उठ रहा है सारे संसार पर वह सनातन ज्योति बिखरने के लिए जो उसे सौंपी गयी है। भारत का जीवन सदा ही मानवजाति के लिए रहा है, उसे अपने लिए नहीं बल्कि मानवजाति के लिए महान् होना है।...

\*

इसके बाद अचानक कुछ हुआ और क्षण-भर में मुझे कालकोठरी के एकान्तवास में पहुँचा दिया गया। इस एकान्तवास में मेरे अन्दर क्या हुआ यह कहने की प्रेरणा नहीं हो रही, बस इतना काफ़ी है कि वहाँ दिन-प्रतिदिन भगवान् ने अपने चमत्कार दिखाये और मुझे हिन्दू धर्म के वास्तविक सत्य का साक्षात्कार कराया। पहले मेरे अन्दर अनेक प्रकार के सन्देह थे। मेरा लालन-पालन इंग्लैंड में विदेशी भावों और सर्वथा विदेशी वातावरण में हुआ था। एक समय मैं हिन्दू धर्म की बहुत-सी बातों को मात्र कल्पना समझता था, यह समझता था कि इसमें बहुत कुछ केवल स्वप्न, भ्रम या माया है। परन्तु अब दिन-प्रतिदिन मैंने हिन्दू धर्म के सत्य को, अपने मन में, अपने प्राण में और अपने शरीर में अनुभव किया। वे मेरे लिए जीवित अनुभव हो गये और मेरे सामने ऐसी सब बातें प्रकट होने लगीं जिनके बारे में भौतिक विज्ञान कोई व्याख्या नहीं दे सकता। जब मैं पहले-पहल भगवान् के पास गया तो पूरी तरह भक्ति-भाव के साथ नहीं गया था, पूरी तरह ज्ञानी के भाव से भी नहीं गया था। बहुत दिन हुए, स्वदेशी-आन्दोलन शुरू होने से पहले और मेरे सार्वजनिक काम में प्रवेश करने से कुछ वर्ष पहले बड़ौदा में मैं उनकी ओर बढ़ा था।

उन दिनों जब मैं भगवान् की ओर बढ़ा तो मुझे उन पर जीवन्त श्रद्धा न के बराबर थी। उस समय मेरे अन्दर अज्ञेयवादी था, नास्तिक था, सन्देहवादी था और मुझे पूरी तरह विश्वास न था कि भगवान् हैं भी। मैं उनकी उपस्थिति का अनुभव नहीं करता था। फिर भी कोई चीज़ थी जिसने मुझे वेद के सत्य की ओर, *गीता* के सत्य की ओर, हिन्दू धर्म के सत्य की ओर <sup>१</sup> अलीपुर बम-केस में विचाराधीन क़ैदी के रूप में एक वर्ष कारागार में बिताने के तीन सप्ताह बाद ३० मई १९०९ में श्रीअरविन्द ने उत्तरपाड़ा में एक ऐतिहासिक भाषण दिया। उसी का कुछ अंश यहाँ दिया जा रहा है।

आकर्षित किया। मुझे लगा कि इस योग में कहीं पर कोई महाशक्तिशाली सत्य अवश्य है, वेदान्त पर आधारित इस धर्म में कोई परम बलशाली सत्य अवश्य है। इसलिए जब मैं योग की ओर मुड़ा और योगाभ्यास करके मैंने यह जानने का संकल्प किया कि मेरा सोचना सही है या नहीं तो मैंने उसे इस भाव और इस प्रार्थना से शुरू किया। मैंने कहा, “हे प्रभो, यदि तुम हो तो तुम मेरे हृदय की बात जानते हो। तुम जानते हो कि मैं मुक्ति नहीं माँगता, मैं ऐसी कोई चीज़ नहीं माँगता जो दूसरे माँगा करते हैं। मैं केवल इस जाति को ऊपर उठाने की शक्ति माँगता हूँ, मैं केवल यह माँगता हूँ कि मुझे इस देश के लोगों के लिए, जिनसे मैं प्यार करता हूँ, जीने और कर्म करने की अनुमति मिले और यह प्रार्थना करता हूँ कि मैं अपना जीवन उनके लिए लगा सकूँ।” मैंने योग-सिद्धि पाने के लिए बहुत दिनों तक प्रयास किया और अन्त में किसी हद तक मुझे मिली भी, पर जिस बात के लिए मेरी बहुत अधिक इच्छा थी उसके सम्बन्ध में मुझे सन्तोष नहीं हुआ। तब उस जेल के, उस कालकोठरी के एकान्तवास में मैंने उसके लिए फिर से प्रार्थना की। मैंने कहा, “मुझे अपना आदेश दो, मैं नहीं जानता कि कौन-सा काम करूँ और कैसे करूँ। मुझे एक सन्देश दो।” इस योगयुक्त अवस्था में मुझे दो सन्देश मिले। पहला यह था, “मैंने तुम्हें एक काम सौंपा है और वह है इस जाति के उत्थान में सहायता देना। शीघ्र ही वह समय आयेगा जब तुम्हें जेल के बाहर जाना होगा; क्योंकि मैं नहीं चाहता कि इस बार तुम्हें सज़ा हो या तुम अपना समय, औरों की तरह अपने देश के लिए कष्ट सहते हुए बिताओ। मैंने तुम्हें काम के लिए बुलाया है और यही वह आदेश है जो तुमने माँगा था। मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि जाओ और मेरा काम करो।” दूसरा सन्देश आया, वह इस प्रकार था, “इस एक वर्ष के एकान्तवास में तुम्हें कुछ दिखाया गया है, वह चीज़ दिखायी गयी है जिसके बारे में तुम्हें सन्देह था, वह है हिन्दू धर्म का सत्य। इसी धर्म को मैं संसार के सामने उठा रहा हूँ, यही वह धर्म है जिसे मैंने ऋषि-मुनियों और अवतारों के द्वारा विकसित किया और पूर्ण बनाया है और अब यह धर्म अन्य राष्ट्रों में मेरा काम करने के लिए बढ़ रहा है। मैं अपनी वाणी का प्रसार करने के लिए इस राष्ट्र को उठा रहा हूँ। यही वह सनातन धर्म है जिसे तुम पहले सचमुच नहीं जानते थे, किन्तु जिसे अब मैंने तुम्हारे सामने प्रकट कर दिया है। तुम्हारे अन्दर जो नास्तिकता थी, जो सन्देह था उनका उत्तर दे दिया गया है, क्योंकि मैंने अन्दर और बाहर स्थूल और सूक्ष्म, सभी प्रमाण दे दिये हैं और उनसे तुम्हें सन्तोष हो गया है। जब तुम बाहर निकलो तो सदा अपने राष्ट्र को यही वाणी सुनाना कि वे सनातन धर्म के लिए उठ रहे हैं, वे अपने लिए नहीं बल्कि संसार के लिए उठ रहे हैं। मैं उन्हें संसार की सेवा के लिए स्वतन्त्रता दे रहा हूँ। अतएव, जब यह कहा जाता है कि भारतवर्ष ऊपर उठेगा तो उसका अर्थ होता है सनातन धर्म ऊपर उठेगा। जब कहा जाता है कि भारतवर्ष महान् होगा तो उसका अर्थ होता है सनातन धर्म महान् होगा। जब कहा जाता है कि भारतवर्ष बढ़ेगा और फैलेगा तो इसका अर्थ होता है सनातन धर्म बढ़ेगा और संसार पर छा जायेगा। धर्म के लिए और धर्म के द्वारा ही भारत का अस्तित्व है। धर्म की महिमा बढ़ाने का अर्थ है देश की

## बुलेटिन अगस्त २०२१

महिमा बढ़ाना। मैंने तुम्हें दिखा दिया है कि मैं सब जगह हूँ, सभी मनुष्यों और सभी वस्तुओं में हूँ, मैं इस आन्दोलन में हूँ और केवल उन्हीं के अन्दर कार्य नहीं कर रहा जो देश के लिए मेहनत कर रहे हैं बल्कि उनके अन्दर भी जो उनका विरोध करते और मार्ग में रोड़े अटकाते हैं। मैं प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर काम कर रहा हूँ और मनुष्य चाहे जो कुछ सोचें या करें, पर वे मेरे हेतु की सहायता करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकते। वे भी मेरा ही काम कर रहे हैं; वे मेरे शत्रु नहीं बल्कि मेरे यन्त्र हैं। तुम यह जाने बिना भी कि तुम किस ओर जा रहे हो, अपनी सारी क्रियाओं के द्वारा आगे बढ़ रहे हो। तुम करना चाहते हो कुछ पर कर बैठते हो कुछ और। तुम एक परिणाम को लक्ष्य बनाते हो और तुम्हारे प्रयास ऐसे हो जाते हैं जो उससे भिन्न या उलटे परिणाम लाते हैं। शक्ति का आविर्भाव हुआ है और उसने लोगों में प्रवेश किया है। मैं एक ज़माने से इस उत्थान की तैयारी करता आ रहा हूँ और अब वह समय आ गया है। अब मैं ही इसे पूर्णता की ओर ले जाऊँगा।”

यही वह वाणी है जो मुझे आपको सुनानी है। आपकी सभा का नाम है “धर्मरक्षणी सभा”। अस्तु, धर्म का संरक्षण, दुनिया के सामने हिन्दू धर्म का संरक्षण और उत्थान—यही कार्य हमारे सामने है। परन्तु हिन्दू धर्म क्या है? वह धर्म क्या है जिसे हम सनातन धर्म कहते हैं? वह हिन्दू धर्म इसी नाते है कि हिन्दूजाति ने इसको रखा है, क्योंकि समुद्र और हिमालय से घिरे हुए इस प्रायद्वीप के एकान्तवास में यह फला-फूला है, क्योंकि इस पवित्र और प्राचीन भूमि पर इसकी युगों तक रक्षा करने का भार आर्यजाति को सौंपा गया था। परन्तु यह धर्म किसी एक देश की सीमा से घिरा नहीं है, यह संसार के किसी सीमित भाग के साथ विशेष रूप से और सदा के लिए बँधा नहीं है। जिसे हम हिन्दू धर्म कहते हैं वह वास्तव में सनातन धर्म है, क्योंकि यही वह विश्वव्यापी धर्म है जो दूसरे सभी धर्मों का आलिंगन करता है। यदि कोई धर्म विश्वव्यापी न हो तो वह सनातन भी नहीं हो सकता। कोई संकुचित धर्म, साम्प्रदायिक धर्म, अनुदार धर्म कुछ काल और किसी मर्यादित हेतु के लिए ही रह सकता है। यही एक ऐसा धर्म है जो अपने अन्दर विज्ञान, यानी साइंस के आविष्कारों और दर्शनशास्त्र के चिन्तनों का पूर्वाभास देकर और उन्हें अपने अन्दर मिला कर जड़वाद पर विजय प्राप्त कर सकता है। यही एक धर्म है जो मानवजाति के दिल में यह बात बिठा देता है कि भगवान् हमारे निकट हैं, यह उन सभी साधनों को अपने अन्दर ले लेता है जिनके द्वारा मनुष्य भगवान् के पास पहुँच सकते हैं। यही एक ऐसा धर्म है जो प्रत्येक क्षण, सभी धर्मों के माने हुए इस सत्य पर जोर देता है कि भगवान् हर व्यक्ति और हर चीज़ में हैं तथा हम उन्हीं में चलते-फिरते हैं और उन्हीं में हम निवास करते हैं। यही एक ऐसा धर्म है जो इस सत्य को केवल समझने और उस पर विश्वास करने में ही हमारा सहायक नहीं होता बल्कि अपनी सत्ता के अंग-अंग में इसका अनुभव करने में भी हमारी मदद करता है। यही एक धर्म है जो संसार को दिखा देता है कि संसार है—वासुदेव की लीला। यही एक ऐसा धर्म है जो हमें यह बताता है कि इस लीला में हम अपनी भूमिका अच्छी-से-अच्छी तरह कैसे निभा सकते हैं, जो हमें यह दिखाता है कि इसके

सूक्ष्म-से-सूक्ष्म नियम क्या हैं, इसके महान्-से-महान् विधान कौन-से हैं। यही एक ऐसा धर्म है जो जीवन की छोटी-से-छोटी बात को भी धर्म से अलग नहीं करता, जो यह जानता है कि अमरता क्या है और जिसने मृत्यु की वास्तविकता को हमारे अन्दर से एकदम निकाल दिया है।

यही वह वाणी है जो आपको सुनाने के लिए आज मेरी जिह्वा पर रख दी गयी थी। मैं जो कुछ कहना चाहता था वह तो मुझसे अलग कर दिया गया है और जो मुझे कहने के लिए दिया गया है उससे अधिक मेरे पास कहने के लिए कुछ नहीं है। जो वाणी मेरे अन्दर रख दी गयी थी केवल वही आपको सुना सकता हूँ। अब वह समाप्त हो चुकी है। पहले भी एक बार जब मेरे अन्दर यही शक्ति काम कर रही थी तो मैंने आपसे कहा था कि यह आन्दोलन राजनीतिक आन्दोलन नहीं है और यह कि राष्ट्रीयता राजनीति नहीं, बल्कि एक धर्म है, एक विश्वास है, एक निष्ठा है। उसी बात को आज फिर मैं दोहराता हूँ, किन्तु आज मैं उसे दूसरे ही रूप में उपस्थित कर रहा हूँ। आज मैं यह नहीं कहता कि राष्ट्रीयता एक विश्वास है, एक धर्म है, एक निष्ठा है, बल्कि मैं यह कहता हूँ कि सनातन धर्म ही हमारे लिए राष्ट्रीयता है। यह हिन्दूजाति सनातन धर्म को लेकर ही पैदा हुई है, उसी को लेकर चलती है और उसी को लेकर पनपती है। जब सनातन धर्म की अवनति होती है तब इस जाति की भी अवनति होती है और यदि सनातन धर्म का विनाश सम्भव होता तो सनातन धर्म के साथ-ही-साथ इस जाति का भी विनाश हो जाता। सनातन धर्म ही है राष्ट्रीयता। यही वह सन्देश है जो मुझे आपको सुनाना है।

CWSA खण्ड ८, पृ. ६, ९-१२

**श्रीअरविन्द**



## २५ मई १९७० का वार्तालाप

देश को कठिनाई से उबारने के लिए क्या करना चाहिये? श्रीअरविन्द ने सभी मुश्किलों को पहले से देख लिया था और उन्होंने समाधान दे दिया है। हम उनकी शताब्दी के करीब पहुँच रहे हैं; ऐसा लगता है मानों सब कुछ पहले से आयोजित हो, मानों, भागवत रूप से आयोजित हो, क्योंकि यह सारे देश में उनकी शिक्षा को प्रसारित करने के लिए एक विलक्षण सुअवसर होगा : शिक्षा, व्यावहारिक शिक्षा, भारत के बारे में शिक्षा, भारत को किस तरह संगठित किया जाये, भारत का मिशन, इन सबके बारे में बताने का सुअवसर होगा। मुझे लगता है कि शताब्दी को सुअवसर मान कर कुछ ज़्यादा आयोजन के साथ उनकी शिक्षा को सारे देश में फैलाया जा सकता है ताकि उनके विचार फैलें। जिन लोगों की दिलचस्पी इसमें है वे यह काम लेकर इसकी शिक्षा दे सकते हैं, सभाएँ करवा सकते हैं और लोगों को प्रकाश और ज्ञान दे सकते हैं। यह विलक्षण सुअवसर है और केवल यही इन सब कठिनाइयों पर प्रकाश डाल सकता है।

जो कुछ हो चुका है और जो कुछ अब हो रहा है, उसके बारे में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि पीछे जाना व्यर्थ है। हमें देश को उसका सच्चा स्थान देना चाहिये, यानी, भगवान् पर भरोसा करने की स्थिति। स्वाभाविक है कि लोग आज जिस पर विश्वास करने की चेष्टा करते हैं, यह चीज़ उससे एकदम दूसरे छोर पर है। लेकिन श्रीअरविन्द उसे इस तरीके से समझाते हैं कि जो उसके विरुद्ध हैं वे भी सहमत हो सकते हैं। समझ रहे हो न? उन्होंने कहने का ऐसा तरीका ढूँढ़ निकाला है जिसे सब समझते हैं। जहाँ तक मैं देखती हूँ यही एकमात्र समाधान है। यही एकमात्र समाधान है। बाक़ी सबका अर्थ होगा जटिलता, प्रतिवाद और कलह।

उनकी शिक्षा के एक तरह के प्रदर्शन की व्यवस्था के लिए अभी हमारे सामने दो वर्ष हैं। और यह राजनीति से ऊपर है, देखो, यह दलबन्दी का प्रश्न नहीं, यह ऐसी बात नहीं है कि चूँकि कुछ लोग उसके पक्ष में हैं अतः स्वभावतः दूसरे उसके पक्ष में न होंगे। यह सारी राजनीति से ऊपर है। राजनीति से परे देश को व्यवस्थित करना है। और यही एकमात्र तरीका है। राजनीति में हमेशा लड़ाई, भद्दी लड़ाई होती है—भद्दी। स्थिति इतनी ख़राब हो चुकी है। वे हमेशा मुझसे कहा करते थे कि चीज़ें बद से बदतर होती जायेंगी, क्योंकि यह उस युग का अन्त है। हम एक ऐसे युग में पदार्पण कर रहे हैं जहाँ चीज़ों को भिन्न तरीके से व्यवस्थित होना होगा। इसीलिए यह विषम काल है।

चूँकि हम जानते हैं कि क्या आने वाला है, हम उसे कम संघर्ष के साथ अधिक जल्दी लाने में सहायता कर सकते हैं। पीछे जाने में कोई आशा नहीं है; इससे चीज़ें अनन्त काल तक चलती चली जायेंगी। हमें आगे बढ़ना चाहिये, पूरी तरह से, और हमें परे जाना होगा, दलबन्दी के परे। और इस चीज़ को श्रीअरविन्द से अधिक अच्छी तरह और कोई नहीं समझा सकता क्योंकि वे दलबन्दी से बहुत, बहुत अधिक परे थे, उन्होंने सभी दलों के लाभ और हानियों को

देखा था और सटीक रूप से समझाया था।

उन्होंने जो लिखा है, और बहुत लिखा है, उसे अगर तुम सावधानी से पढ़ो तो तुम इन सभी प्रश्नों के उत्तर पा लोगे। और साथ-साथ तुम यह भी जान लोगे कि तुम्हें 'भागवत शक्ति' का पूरा-पूरा सहारा मिलेगा। वह 'शक्ति' जो उनके पीछे थी वही इस रूपान्तर के पीछे है। रूपान्तर का समय आ गया है। हम अतीत से चिपके नहीं रह सकते।

राजनीति से परे जाने का सबसे अच्छा उपाय है श्रीअरविन्द के सन्देश का प्रसार करना। क्योंकि अब वे राजनीति में नहीं हैं जो शक्ति हथियाना चाहें; अब हैं केवल उनके विचार और आदर्श। और निश्चय ही, अगर लोग समझ सकें और उनके कार्यक्रम को चरितार्थ कर सकें, तो देश बहुत शक्तिशाली बन जायेगा, बहुत शक्तिशाली।

जो उनकी शिक्षा को समझते हैं, उसे संगठित करने और फैलाने का काम अपने हाथों में ले सकते हैं।

*लेकिन माताजी, जब तक माताजी के बच्चे सरकार में नहीं आते...*

(*माताजी हँसती हैं*) वे टूट जायेंगे। और वे स्वयं इतना सीमित अनुभव करेंगे।

अगर कोई ऐसा व्यक्ति है जो राजनीति में जाना चाहता है तो बात अलग है; लेकिन मेरे खयाल से दूसरे उसमें प्रवेश किये बगैर अधिक मज़बूत होंगे।

*लेकिन बहरहाल सरकार तो होगी ही। अगर माताजी...*

लेकिन वे स्वभाव में राजनीतिक लोग होने चाहियें।

राजनीति हमेशा दलबन्दी से, विचारों से और कर्तव्यों से भी सीमित होती है—जब तक कि हम ऐसी सरकार न बनायें जिसमें कोई दल न हो, ऐसी सरकार जो सभी विचारों को स्वीकारे क्योंकि वह दलबन्दी से ऊपर होगी। दलबन्दी हमेशा एक सीमा होती है; यह एक बक्से की तरह है : तुम बक्से के अन्दर चले जाते हो (*माताजी हँसती हैं*)। निश्चय ही, अगर कुछ ऐसे लोग होते जो बिना किसी दल के सरकार में रहने का साहस करते —“हम किसी दल का प्रतिनिधित्व नहीं करते! हम *भारत* का प्रतिनिधित्व करते हैं”—तो चीज़ अद्भुत होती।

चेतना को ऊपर उठाओ, ऊपर, दलबन्दी से ऊपर।

फिर, स्वभावतः कुछ लोग जो राजनीतिक दल में नहीं आ सके—वे! यही है आगामी कल के लिए काम करना। आगामी कल में ऐसा ही होगा। यह सारा संघर्ष इसलिए है क्योंकि देश को आगे बढ़ना है, इन सभी पुरानी राजनीतिक आदतों से ऊपर उठना है। बिना किसी दल की सरकार। ओह! यह अद्भुत होगा!

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. ४४८-५०

## हृदय की पवित्रता

हृदय की आराधना का यह आन्तरिक अर्पण ही उत्सर्ग की मूल वस्तु है, उसकी असली जान है, यही प्रतीक में उसकी आत्मा है, यही कर्म में उसकी भावना है। यदि इस अर्पण को पूर्ण और विश्वव्यापी बनाना हो तो हमें अपने सभी भावों को भगवान् की ओर मोड़ना होगा, यह अत्यावश्यक है। यह मानव-हृदय की शुद्धि का तीव्रतम उपाय है, यह उससे कहीं अधिक शक्तिशाली उपाय है जितनी कि कोई भी नैतिक या सौन्दर्यबोधी शुद्धि अपने अर्ध-प्रभावी और ऊपरी दबाव से कर सकती है। एक चैत्य अग्नि हमें अपने अन्दर जलानी होगी और उसमें सब कुछ, उस पर 'भगवान् का नाम' लगा कर डाल देना होगा। उस आग में सभी भाव अपने स्थूल तत्त्वों को त्याग देने को बाधित होंगे और वे जो अदिव्य विकृतियाँ हैं, वे भी जल कर भस्म हो जायेंगी और दूसरी अपनी कमियों को दूर हटा देंगी जब तक कि विशालतम प्रेम की भावना और निर्मल दिव्य आनन्द आग, धूँए तथा लोबान में से नहीं उभरता। यह प्रभु-प्रेम जो इस प्रकार उभर कर आता है, उसे यदि आन्तरिक भावना में भगवान् के प्रति और सब प्राणियों के प्रति एक सक्रिय विश्वव्यापी समता में विस्तारित कर दिया जाये तो वह एक ऐसा साधन होगा जो जीवन की पूर्णता के लिए अधिक समर्थ होगा और भ्रातृभाव का प्रभावहीन मानसिक आदर्श जितना कर सकता है उसकी अपेक्षा कहीं अधिक यथार्थ होगा। यही प्रेम जब कर्मों में उँडेला जाता है तो यह अकेला ही संसार में सामञ्जस्य और उसके प्राणियों के बीच सच्ची एकता ला सकता है; इस दिशा में किये गये अन्य सभी प्रयत्न व्यर्थ हैं जब तक कि 'भागवत प्रेम' अपने-आपको इस रूप में प्रकाशित नहीं करता कि मानों वही पार्थिव प्रकृति में आयी इस अभिव्यक्ति का हार्द हो।

CWSA खण्ड २३, पृ. १६५-६६

श्रीअरविन्द

## सच्चा अभ्यास

मनुष्य जो कुछ थोड़ा-बहुत जानता है, उसे जीवन में उतारना ही अधिक जानने का सबसे उत्तम तरीका है, यह पथ पर आगे बढ़ने का सबसे अधिक शक्तिशाली उपाय है—बस, थोड़ा-सा जीवन में लाने का प्रयत्न हो, पर हो बहुत सच्चा। उदाहरणार्थ, जब तुम जानते हो कि अमुक चीज़ करने-लायक नहीं है, बस, उसे नहीं करना चाहिये। जब तुम अपने अन्दर एक दुर्बलता, एक अशक्तता देख लेते हो तो फिर उसे दोबारा प्रकट नहीं होने देना चाहिये। जब तुम्हें किसी तीव्र अभीप्सा के होने पर इस बात की झलक मिल जाती है कि क्या होना चाहिये, भले ही वह एक क्षण के लिए ही मिली हो, तो फिर उसे जीवन में सिद्ध करना भूलना नहीं चाहिये—कभी भी भूलना नहीं चाहिये।

कुछ ऐसे लोग होते हैं जो सर्वदा अपनी कमज़ोरियों के लिए बिलखते रहते हैं। उससे कुछ विशेष लाभ नहीं होता। यदि तुमने वास्तव में उन्हें एक बार देख लिया हो और यथार्थ में, सच्चे रूप में समझ लिया हो, यदि तुमने देख लिया हो कि ऐसा नहीं होना चाहिये, तब बिलखना बन्द कर दो। अब तो बस नित्य प्रयास करना होगा, अब तो अपने अन्दर संकल्प उत्पन्न करना होगा, अब तो प्रत्येक क्षण तुम्हें जाग्रत् रहना होगा—जिस दोष को तुमने एक बार जान लिया है उसे तुम्हें फिर दोबारा कभी नहीं होने देना होगा। अज्ञानवश भूल करना, अचेतनतावश भूल करना अवश्य ही बहुत शोचनीय बात है, पर यह संशोधनीय है। परन्तु यह जान लेने पर भी कि इसे नहीं करना चाहिये, भूल करते रहना एक प्रकार की कायरता है और उसे कभी प्रश्रय नहीं देना चाहिये।

यह कहना : “ओह ! मानव-स्वभाव ही ऐसा है। ओह ! हम लोग निश्चेतना में हैं। ओह ! हम तो अज्ञान में हैं”—यह सब आलस्य और दुर्बलता है। और इस आलस्य और दुर्बलता के पीछे एक बहुत बड़ा अशुभ संकल्प भी विद्यमान है। लो बस !

मैं यह इसलिए कहती हूँ कि ऐसे बहुत से, अनगिनत लोग हैं जिन्होंने मेरे सामने यह मन्तव्य प्रकट किया है। और यह सर्वदा ही अपने लिए बहाना बनाने का एक तरीका होता है। यह कहना : “हम जो कर सकते हैं करते हैं”, कोई सत्य कथन नहीं है। क्योंकि, यदि तुम सच्चे हो तो एक बार जो वस्तु तुम देख लेते हो—जब तक तुमने देखा नहीं है तब तक कुछ कहने को नहीं है—पर जिस क्षण तुम देख लेते हो, उसी क्षण तुम भागवत कृपा भी पा जाते हो, और जिस क्षण तुम भागवत कृपा को पा लेते हो उस क्षण से उसे भूलने का कोई अधिकार तुम्हें नहीं रहता।

बुलेटिन अगस्त २०२१

## पूर्ण आत्मदान

भगवान् गुरु कहते हैं, “कोई अत्यन्त दुराचारी भी यदि अनन्य भाव से मेरी ओर मुड़ता है तो उसे साधु पुरुष ही समझना चाहिये, क्योंकि उसमें प्रयास करने का जो स्थिर संकल्प है वह सही और पूर्ण संकल्प बन गया है। शीघ्र ही वह धर्मात्मा बन जाता है और शाश्वत शान्ति को प्राप्त करता है।”<sup>१</sup> दूसरे शब्दों में, समग्र आत्मदान आत्मा के सभी द्वारों को पूरी तरह खोल देता है और उत्तर में मनुष्य में प्रभु के अवतरण और आत्मदान को ले आता है और वह सहसा निम्न को आध्यात्मिक प्रकृति में परिवर्तित कर हमारे अन्दर की प्रत्येक चीज़ को भागवत विधान के अनुसार पुनर्गठित करता और अपने अनुरूप बना लेता है। आत्मदान का संकल्प ऐसी चीज़ है जो अपनी शक्ति से भगवान् और मनुष्य के बीच के परदे को हटा परे करता है, प्रत्येक भूल को मिटा देता है, प्रत्येक बाधा को निर्मूल कर देता है। वे मनुष्य जो अपनी मानव-शक्ति के बल पर, ज्ञान के बल पर, पुण्य के बल पर, कठोर तप के बल पर भगवान् को पाना चाहते हैं वे ‘अनन्त’ की ओर काफ़ी आतुरतापूर्ण कठिनाई के साथ बढ़ पाते हैं; परन्तु जब आत्मा अपने अहंकार को और अहंकार के कार्यों को भगवान् पर छोड़ देती है तो भगवान् स्वयं हमारे पास आ जाते हैं और हमारा भार ले लेते हैं। अज्ञानी को वे दिव्य ज्ञान का प्रकाश प्रदान करते हैं, दुर्बल को भागवत संकल्प की शक्ति, पापी को भागवत पवित्रता में निस्तार, दुःखी को असीम आध्यात्मिक हर्ष और आनन्द प्रदान करते हैं। उन सबकी दुर्बलता, उनका अपने मानव-बल में लड़खड़ाना—इससे कुछ फ़र्क नहीं पड़ता। भगवान् की वाणी अर्जुन के आगे घोषित करती है कि “यह मेरी प्रतिज्ञा है कि जो मुझसे प्रेम करता है उसका कभी नाश नहीं होता।”<sup>२</sup>

CWSA खण्ड १९, पृ. ३३४-३५

श्रीअरविन्द

<sup>१</sup> अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।  
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।

<sup>२</sup> कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

भगवद्गीता, ९ / ३०-३१

भगवद्गीता, ९ / ३१

## शरीर की साधना

शारीरिक व्यायाम करने का अर्थ है, शरीर के कोषों में चेतना भरना। तुम इसे जानो या न जानो, पर यह एक वास्तविक तथ्य है। जब हम अपनी मांसपेशियों को अपनी इच्छा के अनुसार चलाने के लिए एकाग्र होते हैं, जब हम अपने अंगों को मुलायम बनाने, उनमें स्फूर्ति या शक्ति या प्रतिरोध या नमनीयता, जो कि स्वाभाविक रूप में उनमें नहीं होती, ले आने का प्रयास करते हैं, तब हम शरीर के कोषों में एक चेतना सञ्चारित कर देते हैं जो वहाँ पहले नहीं थी और इस तरह शरीर को एक ऐसा यन्त्र बना देते हैं जो सर्वत्र एक जैसा और ग्रहणशील होता है, जो अपनी क्रिया में तथा अपनी क्रिया के द्वारा प्रगति करता है। शारीरिक व्यायाम का यही असली महत्त्व है।... और जब तुम इस व्यायाम का पूर्णतः अद्भुत परिणाम देखते हो, जब तुम देखते हो कि किस हद तक शरीर पूर्ण बनाया जा सकता है तब तुम समझते हो कि वह किस हद तक जड़तत्त्व में अवतरित चैत्य पुरुष के कार्य के लिए सहायक हो सकता है। क्योंकि जब चैत्य पुरुष के हाथ में एक ऐसा यन्त्र होगा जो सुसंगठित, सुसमञ्जस और शक्ति, नमनीयता तथा सम्भावनाओं से पूर्ण हो तो, स्वभावतः ही उससे उसके कार्य में यथेष्ट सुविधा होगी।

२८ नवम्बर १९५८

‘श्रीमानुवाणी’, खण्ड १०, पृ. ३७-३८

नेता बनने के लिए व्यक्ति को अपने अहंभाव को जीतना ज़रूरी है और अपने अहं पर विजय पाना योग करने के लिए पहला अनिवार्य पग है। इस तरह भगवान् को पाने में खेल प्रभावशाली सहायता कर सकते हैं।

बहुत कम लोग इसे समझते हैं, और साधारणतः जो लोग खेलों के इस बाह्य अनुशासन के, स्थूल भौतिक उपलब्धि पर इस एकाग्रता के विरोधी हैं उनमें अपनी भौतिक सत्ता पर नियन्त्रण का सर्वथा अभाव है। और श्रीअरविन्द का पूर्ण योग साधित करने के लिए अपने शरीर पर नियन्त्रण होना सबसे पहला अनिवार्य पग है। जो लोग शारीरिक शिक्षण की गतिविधियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं वे पूर्णयोग के सच्चे पथ पर एक पग भी न चल सकेंगे जब तक कि पहले इस घृणा से छुटकारा नहीं पा लेते। शरीर पर सब प्रकार का नियन्त्रण होना एक अनिवार्य आधार है।

१० अप्रैल १९५७

‘श्रीमानुवाणी’, खण्ड ९, पृ. ९०-९१

हमने अपने अनुभव से जाना है कि किसी विशेष व्यायाम-पद्धति पर ही एकमात्र यौगिक व्यायाम की मुहर नहीं लगायी जा सकती और यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि केवल इन्हीं व्यायामों में भाग लेने से स्वास्थ्य-लाभ होगा, क्योंकि ये यौगिक व्यायाम हैं।

बुलेटिन अगस्त २०२१

अपनी आवश्यकताओं और क्षमताओं के अनुकूल कोई भी युक्तियुक्त व्यायाम-पद्धति व्यायाम करने वाले को अपना स्वास्थ्य सुधारने में सहायता देगी। और फिर मनोभाव का महत्त्व ज्यादा है। यौगिक वृत्ति से अपनायी गयी कोई भी सुनियोजित, वैज्ञानिक रूप से व्यवस्थित व्यायाम-पद्धति यौगिक व्यायाम हो सकती है और उसमें भाग लेने वाला व्यक्ति शारीरिक स्वास्थ्य और नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान की दृष्टि से पूरा लाभ उठा सकता है।

१९५९ के प्रारम्भ में

‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १२, पृ. ३०८-०९

अगर शरीर को ‘प्रभु’ का मन्दिर मान लिया जाये, तो, उदाहरण के लिए चिकित्सा-विज्ञान मन्दिर की सेवा के लिए आरम्भिक पूजा बन जाता है और सभी तरह के चिकित्सक वे पुजारी बन जाते हैं जो पूजा की विभिन्न विधियों के पुरोहित होते हैं। इस तरह चिकित्सा सचमुच पुरोहिताई है और उसे उसी तरह मानना चाहिये।

यही बात शारीरिक प्रशिक्षण और उन सभी विज्ञानों के लिए कही जा सकती है जो शरीर और उसके कार्यों के साथ सम्बन्ध रखते हैं। और जड़-भौतिक विश्व को अगर परम प्रभु की अभिव्यक्ति और बाहरी लबादे के रूप में देखो तो कहा जा सकता है कि साधारणतः, सभी भौतिक विज्ञान पूजा के कर्मकाण्ड हैं।

१० अक्तूबर १९५८

‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १५, पृ. ३९३

यह बहुत स्पष्ट है कि जो लोग शारीरिक शिक्षण का वैज्ञानिक और सुसमन्वित रूप में अनुशीलन करते हैं वे अपने शरीर पर इतना नियन्त्रण प्राप्त कर लेते हैं जो साधारण व्यक्ति के लिए अकल्पनीय होता है। जब रूसी कसरतबाज़ यहाँ आये थे तो हमने देखा ही था कि वे कितनी सरलता से ऐसे व्यायाम कर लेते थे जो साधारण व्यक्ति के लिए असम्भव हैं और वे उन्हें ऐसे कर रहे थे जैसे यह संसार की सबसे आसान चीज़ हो; उसमें प्रयास का थोड़ा भी भान न होता था! हाँ तो, यह दक्षता शरीर के रूपान्तर की ओर एक महान् पग है। और इन लोगों ने, कह सकती हूँ कि, जो सिद्धान्ततः जड़वादी हैं, अपने प्रशिक्षण में किसी आध्यात्मिक पद्धति का उपयोग नहीं किया था; एकमात्र भौतिक साधनों और मानव-संकल्पशक्ति के सज्ञान प्रयोग से उन्होंने यह परिणाम प्राप्त किया था, यदि उन्होंने इसमें आध्यात्मिक ज्ञान और शक्ति को जोड़ दिया होता तो वे चमत्कारिक परिणामों पर पहुँच गये होते...। संसार में प्रचलित मिथ्या धारणाओं के कारण सामान्यतः हम इन दोनों चीज़ों को—आध्यात्मिक प्रभुत्व और भौतिक दक्षता को—एक साथ नहीं देखते, और इस प्रकार सदा ही एक में दूसरी चीज़ का अभाव रहता है; पर ठीक यही चीज़ है जिसे हम करना चाहते हैं और श्रीअरविन्द इसी को समझाते हैं: यदि दोनों मिल जायें तो परिणाम ऐसी पूर्णता तक पहुँच सकता है जिसे साधारण मानव-मस्तिष्क सोच भी नहीं सकता और इसी के लिए हम प्रयास करना चाहते हैं।

१७ अप्रैल १९५७

‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ९, पृ. ९५-९६

## श्रीअरविन्द के उत्तर

(८१)

लेकिन अब दूसरों पर शान्ति या प्रेम छलकाने का अवसर ही कहाँ रहा? पहली बात तो यह कि अब ऐसा कोई नहीं है जिस पर यह छलकाया जा सके, दूसरी यह कि मेरे खयाल से मुझे बहुत से ऐसे कड़वे अनुभव हो चुके हैं—हालाँकि, मेरा अनुमान यह है कि मेरी कोई गलती नहीं थी—कि मैं इन चीज़ों में पड़ना ही नहीं चाहता। यह “अंगूर खट्टे हैं” का मामला नहीं है, क्योंकि यहाँ तो अंगूर सचमुच बहुत ज़्यादा ही खट्टे हैं!

हाँ, तो अगर अंगूर तुम्हारी पहुँच के बाहर हैं (उँडलवाने के लिए कोई है ही नहीं), तो शुक मनाओ, बहुत बढ़िया बात है। जैसे अवसर पाने पर चोर चोरी करने को उतारू हो जाता है, उसी तरह उँडेलने वाला भी अवसर की ताक में रहता है। इसीलिए सुअवसर न मिलना आशीर्वाद के रूप में देखा जा सकता है! और इसके साथ-साथ अगर अंगूर खट्टे माने जायें, तो इससे ज़्यादा अच्छी बात कुछ हो ही नहीं सकती—क्योंकि यह चीज़ प्रलोभन को छलकने से रोकेगी या कम-से-कम उससे दो-चार हाथ तो करेगी ही!

मेरे अन्दर एक ऐसी शान्ति प्रायः एक प्रवाह की तरह उतर रही है जिसके अन्दर एक प्रबल गन्ध है और उससे शरीर कड़ा और अचल बन रहा है। करीब-करीब वैसा ही अनुभव हो रहा है जैसा आलस में होता है, लेकिन यह अनुभव एकदम स्पष्ट है हालाँकि इसकी भी सम्भावना है कि तमस् बढ़ जाये और उससे कामुक-संवेदनाएँ भी ऊपर उठ आयें—साधारणतः ऐसा ही होता है। रात को यह तमस् एकदम दीखता है, क्योंकि जब कभी मैं तीन बजे जाग जाता हूँ तो मुझे महसूस होता है कि अब और सोने की ज़रूरत नहीं है, लेकिन उठने का मेरा मन ही नहीं करता और मैं दोबारा सोने की कोशिश करता हूँ।

हमेशा रात को तमस् के होने की सम्भावना ज़्यादा रहती है क्योंकि शरीर का अधिकांश नींद में अवचेतना में डूब जाता है—लेकिन, साथ ही, तमस् के उठने के विरोध में व्यक्ति के अन्दर एक प्रतिक्रिया (आन्तरिक) होनी ही चाहिये। शरीर के कोषाणुओं में एक शान्ति होनी चाहिये, यहाँ तक कि स्थिरता का भी भाव हो सकता है (ताकि ऐसा लगे कि शरीर नहीं हिल रहा है, उसे हिलाया जा रहा है) और यह एकदम अलग ही चीज़ है और तमस् तथा अस्थिरता



बुलेटिन अगस्त २०२१

में आसानी से भेद किया जा सकता है। शान्ति का सीधा प्रवाह सामान्यतः स्थैतिक ब्रह्मन् का बहुत कुछ चेतना में, नीचे भौतिक तक उतार लाता है और उससे व्यक्ति को उपनिषद् में कही गयी इस सूक्ति का अनुभव होता है—*तदेजति तन्नैजति*—बिना हिले-डुले वह अग्रसर होता है।

मेरी समझ में नहीं आता कि आज शाम को मुझे अचानक ऐसा क्यों महसूस हुआ कि मैं श्रीमाँ के साथ सम्पर्क खो बैठा हूँ। निस्सन्देह, मैं काम में इतना निमग्न था कि स्वाभाविक रूप से मेरी तल्लीनता बहिर्मुख थी, लेकिन इससे सम्पर्क इस तरह से तो नहीं टूट सकता न? और कोई भी ऐसी चीज़ न थी जो दूरियों से आयी हो, यानी कोई ऐसा न आया जिसके साथ मेरा सम्पर्क हुआ हो, जैसे 'च' या 'म'। शायद मज़दूरों के साथ बहुत अधिक समय बिताने, सम्पर्क रखने से ऐसा हुआ। लेकिन यह तो रोज़मर्रा की बात है।

इन चीज़ों का हमेशा एक स्पष्ट बाहरी कारण नहीं होता—या यह कहें कि बाहरी कारण उनकी क्रिया का बस एक बहाना होता है। यह एक तरह का धक्का-सा होता है जो चेतना के किसी हिस्से से आता है और वह तुम्हें यकायक तुम्हारे स्थान से हटा देता है—तुम्हें फ़ौरन अपनी जगह पर लौट आने का गुर आना चाहिये।

२० अप्रैल १९३५

आज का दिन कल से एकदम अलग था—एक ही मज़दूर था और उसे भी बस सीमेण्ट की पट्टियों पर पानी का छिड़काव करना था। हमेशा की तरह मैंने जितना हो सका फ़्रेंच का अध्ययन किया। मैं 'स' से फ़्रेंच में गणित की एक किताब ले आया था और मैं उसकी शब्दावलियों और व्याख्याओं में ऐसा डूबा कि दो घण्टे बाद भी उसमें से बाहर निकलना मेरे लिए मुश्किल हो गया। उसे तो मानों मैं कई सालों के बाद प्राथमिक पुस्तक के रूप में बड़े चाव से पढ़ रहा था। लेकिन यहाँ आकर्षण इतना विषय के लिए नहीं बल्कि भाषा के लिए था। निस्सन्देह, यह सब तभी महसूस किया जा सकता है जब हमें लगता है कि कोई पीछे से सहारा दे रहा है, वरना सुन्दर से सुन्दर चीज़ भी मेरा मन नहीं लुभाती।

यह सच है। मुझे आशा है कि यह "सहारा" तुम्हारे अन्दर जल्दी ही हमेशा के लिए स्थिर हो जायेगा।

२१ अप्रैल १९३५

मैंने देखा है कि 'ज' हमेशा प्रसन्नचित्त और मुस्कुराता हुआ रह सकता है। यह

आन्तरिक आराम और सच्चे सन्तोष का परिणाम होगा; नहीं तो हमेशा मुस्कराते रहना सम्भव ही नहीं होता। या फिर इसकी वजह यह हो कि उसके अन्दर कोई ऐसी विशेष समस्याएँ ही न हों जिन पर वह माथापच्ची करे? जब मैंने एक दिन यह बात 'अ' से कही तो वह मेरे इस मूल्यांकन से सन्तुष्ट न हुआ। उसने कहा कि 'ज' कुछ लोगों के साथ ही खुशमिजाज रहता है, लेकिन जब 'म' के साथ उसका वास्ता पड़ा तो वह वैसा न था—वैसे यह ज़रा-सी बात उसके स्वभाव का कोई दोष तो नहीं दर्शाती। क्योंकि वैसे तो उसके अन्दर कोई बहुत ही सुन्दर और ठोस चीज़ है।

मेरे ख़याल से 'ज' का स्वभाव ऐसा ही है। उसके अन्दर सामान्य प्रकार की कठिनाइयाँ हैं और वह उन पर ज़रा भी माथापच्ची नहीं करता। वह सन्तुलित है और मुश्किल आने पर वह उत्तेजित भी नहीं होता, बल्कि मुश्किल का सामना ऐसी ठोस शान्ति और निश्चिति के साथ करता है कि स्वयं मुसीबत मुसीबत नहीं बनी रहती।

'प', 'च' और 'र' 'नूवोते हाउस' देखने आयीं जहाँ मैं काम रह रहा था। मैंने पहले ही उन तीनों के सामने अलगाव की एक दीवार खड़ी कर दी थी, और जब वे मेरे सामने पहुँचीं तो ज़रा सकुचायीं भी। 'प' ने बड़ी भद्रता से पूछा कि क्या वह अन्दर आकर देख सकती है। मैं अपनी दीवार के प्रभाव को देख स्वयं ही मुस्करा उठा। एकाध प्रश्न पूछे उन्होंने और बस वे चली गयीं। बहरहाल, ऐसा लगा कि उन कुछ निरीह शब्दों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया ने मेरी चेतना को उस समय के लिए भटका दिया। निस्सन्देह, यह अतीत के सम्पर्कों का प्रभाव होगा कि इन चीज़ों ने मेरी चेतना के कुछ हिस्से पर तो ऋब्जा कर ही लिया।

स्पष्ट ही इसका कारण अतीत के प्रभाव और उससे जुड़ी हुई चेतना की अभ्यासगत गतियाँ ही हैं। भौतिक सत्ता में अतीत की छाप या प्रभाव बहुत बड़ी जगह लेते हैं, क्योंकि बार-बार होने वाले प्रभावों की प्रक्रिया के द्वारा ही चेतना का निर्माण हुआ था और उसे जड़-भौतिक में प्रकट किया गया था—और साथ ही इन प्रभावों के प्रति चेतना की अभ्यासगत प्रतिक्रियाएँ होती हैं और मेरे ख़याल से इसी को मनोवैज्ञानिक व्यक्ति का "चरित्र" कहते हैं। एक मत के अनुसार चेतना केवल इन्हीं चीज़ों से बनती है—लेकिन यह तो प्रकृति के एक ब्योरे को खींच-तान कर यह कहना हुआ कि पूरी 'प्रकृति' या 'चरित्र' ही बस इन्हीं प्रभावों की प्रतिक्रियाओं का परिणाम है।

शरीर कुछ थका हुआ, लेकिन खुश है। कोई पूछ सकता है, "मन और प्राण के बारे में क्या कहोगे?" उनका तो फ़िलहाल एकदम अस्तित्व ही नहीं है!

## बुलेटिन अगस्त २०२१

यह बहुत सुखी अवस्था है—(शरीर की थकान नहीं है, बल्कि मन और प्राण का अनस्तित्व है)। यह ब्रह्म-निर्वाण के प्रति पहला चरण है—*ब्रह्म निर्वाणन्द* !

२२ अप्रैल १९३५

*अगर ब्रह्म-निर्वाण की ओर यह पहला चरण है तो कितना लम्बा रास्ता होगा यह!  
ब्रह्म-निर्वाण 'की ओर' का अर्थ क्या है? क्या यह महीने, साल या कई जीवन  
लेगा? धीरज, धीरज, हमेशा धीरज!*

शायद इतनी प्रतीक्षा न करनी पड़े—ज्यादा से ज्यादा एक-दो बड़े कदम लेने होंगे। इसके लिए एकमात्र आवश्यकता यह है कि लक्ष्य को निश्चित कर लिया जाये—अगर व्यक्ति लक्ष्य पर अपनी पूरी तीव्रता को उत्तरोत्तर लगाता रहे तो सामान्यतः यह निश्चित रूप से पहला कदम लेना, यानी सुनिश्चित आरम्भ है।

२३ अप्रैल १९३५

*मैंने बहुत ठोस रूप में शान्ति के स्पन्दन अनुभव किये। इन्हें मैंने मस्तिष्क के दो गोलाधों के बीच के हिस्से में अनुभव किया। मुझे याद नहीं बीच के उस हिस्से में क्या होता है—शायद मस्तिष्कमेरु-द्रव (Cerebro-Spinal fluid)। निस्सन्देह, अगर वह शान्ति को सबसे पहले ग्रहण करता है तो शान्ति स्नायुओं के द्वारा चारों तरफ फैल कर धमनियों और मांसपेशियों तक में प्रवेश कर सकती है। इसका मतलब यह कि “शान्ति” को भी शरीर के साथ जोड़ा जा सकता और स्नायुओं के घेरे में बाँधा जा सकता है।*

मेरे अनुमान से इसका अर्थ होगा कि शान्ति बहुत भौतिक और ठोस बन चुकी है या बन रही थी और भौतिक रूप से यह गोचर हो गयी है, यानी वास्तविक बन गयी है—“कोषाणुओं में शान्ति”। सब कुछ “सारतत्त्व” है, ठोस है—शान्ति, चेतना, आनन्द—सभी कुछ; केवल उसी ठोसपन अथवा सारतत्त्व के विभिन्न स्तर होते हैं।

*जब मैं रात को खाना खाने जा रहा था तो 'स' ने मुझे बुलाया और उसके अन्दर जलन की जो अनुभूति हो रही थी उसके बारे में उसने मुझसे पूछा। अब मुझे इसके बारे में भला क्या पता? फिर भी मैंने उससे कहा कि यह किसी उच्चतर वस्तु के लिए ज्वाला हो सकती है। मैं ठीक इससे उलटा भी कह सकता था, कि यह किसी प्राणिक वस्तु के लिए जलन हो या फिर यह मात्र कोई भौतिक संवेदन हो। लेकिन फिर मैंने उच्चतर लौ की बात का निषेध किया और उससे इस जलन*

को शान्ति के साथ सहने के लिए कहा, मानों वह जो कुछ अनुभव कर रही थी उसके बारे में मैं जानता था!

निस्सन्देह, जलन का कारण कुछ भी हो सकता है; लेकिन शायद तुम्हारा सुझाव उसकी इस बारे में मदद करे कि वह जलन का अनुभव ग़लत तरीक़े से न करे!

एक दिन 'ज' ने मुझसे कहा कि उसके घुटनों तक मैं शान्ति का अवतरण हो चुका, और बस नीचे का हिस्सा ही बच रहा है। यह भी एक ठोस प्रमाण है कि शान्ति बहुत गोचर और वास्तविक वस्तु है। लेकिन अभी मैं इससे बहुत दूर ही होऊँगा क्योंकि मैंने अब तक इसका अनुभव केवल मस्तिष्क की गुहा में ही किया है। तो अभी तक मस्तिष्क-सम्बन्धी सभी स्थान, रीढ़ की हड्डी, मांसपेशियाँ और अन्त में बाक़ी सभी हड्डियाँ शान्ति से अछूती ही हैं! इस पथिक यानी मैं, और इस मेहमान यानी शान्ति—दोनों ही को अभी काफ़ी रास्ता तय करना बाक़ी है! या शायद इस शान्ति के और भी साथी हैं जिनकी वह प्रतीक्षा कर रही है, या फिर शायद इसे रास्ते में रुकावटें मिल रही हैं!

सामान्य नियम के तौर पर शरीर में इसका अवतरण इस तरह होता है—पहले सिर में, फिर गर्दन तक, उसके बाद छाती में। बहुतों के लिए प्राणिक प्रतिरोधों के कारण नाभि में नीचे उतरने के पहले ही बड़ा विराम आ जाता है। एक बार शान्ति उस बाधा को पार कर ले तो फिर उसे नीचे तक उतरने में ज़्यादा समय नहीं लगता। लेकिन इसमें कितना समय लगेगा इसके लिए कोई नियम नहीं है। कइयों में यह बाढ़ की तरह उतरती है तो दूसरों में व्यवस्थित रूप से और क्रमशः बढ़ती हुई उतरती है। मुझे नहीं लगता कि किसी के अन्दर उतरने के लिए शान्ति अपने संगी-साथियों की राह देखती है—ज़्यादातर तो यह स्वयं अपने-आप सबसे पहले उतरना चाहती है, फिर अपने साथियों को इस सन्देश के साथ बुलाती है, “आ जाओ सब, मैंने तुम लोगों के लिए यह स्थान अच्छी तरह से तैयार करके रखा है।”

२४ अप्रैल १९३५

अब खाने के प्रति मेरी मनोवृत्ति बदल गयी है। मैं इस विश्वास के साथ खाना शुरू करता हूँ कि थाली में जो कुछ है वह खाऊँगा, लेकिन दो-तीन गस्से खाने के बाद ही मैं सन्तोष का अनुभव करने लगता हूँ और बाक़ी खाना बस ज़रूरत के तौर पर ही खाता हूँ। सवेरे भूख से ज़्यादा तो स्वाद के लिए मैं खाता ही चला जाता हूँ। दोपहर को भूख न के बराबर होती है, लेकिन नियम के तौर पर मैं खा लेता हूँ। रात को चूँकि ज़्यादा काम नहीं होता तो शरीर को खाने में व्यस्त रखना

## बुलेटिन अगस्त २०२१

होता है। मुझे लगता है कि ठोस खाने की तादाद घटा कर मुझे पानी ज्यादा पीना चाहिये। पानी शरीर को ठण्डा रखता है और शायद शान्ति के लिए यह अच्छा आधार हो, हालाँकि उसके बाद मुझे शान्ति के लिए पथ्य-सम्बन्धी एक 'चार्ट' तैयार करना चाहिये।

मेरे खयाल से नहीं। शान्ति पथ्य पर न के बराबर निर्भर करती है! केवल पेट की शान्ति ही भोजन पर निर्भर करती है, यद्यपि शायद इस बात पर बहस की जा सकती है कि अन्त में तो समस्त शान्ति पेट की शान्ति पर ही निर्भर करती है न?

२५ अप्रैल १९३५

ऐसा नहीं लगता कि बातचीत हमेशा शान्ति को धुँधला देती है, यद्यपि बहुत बार बातचीत, भले वह साधकों के साथ क्यों न हो, शान्ति के अनुकूल नहीं होती। प्रायः यह खबरों का शिकार करने-जैसी बात होती है: कोई भी बात चर्चा का विषय बन जाती है, किसी सड़ी हुई खबर को उठा लिया जाता है, किसी की निन्दा में लोग जुट जाते हैं, और व्यक्ति को लगता है कि वाह! उसे कुछ जानकारी प्राप्त हो गयी! लेकिन अक्सर व्यक्ति कुछ खो बैठता है। मैं कई बार सोचता हूँ कि बातचीत किये बिना क्या कोई कभी कुछ खोता है!

अगर अन्दर शान्ति बहुत प्रबल हो तो बातचीत उसे धुँधला नहीं सकती—क्योंकि यह शान्ति मानसिक या प्राणिक नहीं होती, भले वह मन और प्राण पर भी छायी रहे—या फिर वह ऐसा बादल होता है जो गहरे झुए बिना जल्दी ही गुज़र जाता है। हालाँकि, सामान्यतः ऐसी बातें चेतना को बिखरा देती हैं और व्यक्ति बहुत कुछ खो सकता है। एकदम से बातचीत न करने की एकमात्र हानि यह होती है कि इससे आदमी अपने जीवन को औरों से एकदम अलग-थलग कर देता है, लेकिन इस तरह की बातों में हिस्सा नहीं लेने से वह कभी कुछ खोता नहीं है।

२६ अप्रैल १९३५

व्यक्ति यह सोच सकता है कि पुरुष का स्त्री से या स्त्री का पुरुष से बातचीत करना या उसे देख कर मुस्कुराना कोई अपवित्रता नहीं है, लेकिन साधकों के सम्बन्ध में यह बात एकदम सटीक नहीं बैठती। यह इतना सरल और सहज मामला नहीं है। पहले तो जब पुरुष किसी स्त्री को या स्त्री किसी पुरुष को दूर से देखती है तो उसके मन में यह प्रक्रिया शुरू हो जाती है कि वह उससे बात करे या न करे, उसे देख कर मुस्कुराये या नहीं? दूसरे, मुस्कुराने या बातचीत करने के बाद कुछ समय तक उसके अन्दर जुगाली की प्रक्रिया चलती है। मन या भौतिक मन में यही

चलता रहता है और व्यक्ति को यह पता तक नहीं होता कि प्राण तथा अवचेतन प्राण में सचमुच क्या होता रहता है—वहाँ जो घटित होता है उसका प्रभाव इतना सरल नहीं होता जितना व्यक्ति सोचता है कि होगा। बहुत, बहुत ही कम ऐसे लोग होंगे जिनके अन्दर पुरुष तथा स्त्री दोनों ही के साथ शब्दों के आदान-प्रदान इत्यादि का समान असर हो।

यह सब इसलिए होता है क्योंकि प्राण पुरुष और स्त्री के सम्पर्क में आने पर एकदम सचेतन हो जाता है और फ़ौरन 'पुरुष की स्त्री' और 'स्त्री की पुरुष' के प्रति मनोवृत्ति को तूल देने लगता है। इस मनोभाव से पिण्ड छुड़ाने के लिए व्यक्ति को स्त्री को मात्र एक मानव सत्ता के रूप में देखना चाहिये। यह है तो मुश्किल और इसके लिए कुछ प्रशिक्षण की भी आवश्यकता होती है; क्योंकि भले मन यह वृत्ति अपना ले, लेकिन प्राण पर भरोसा नहीं किया जा सकता और व्यक्ति को चौकन्ना रहना होता है कि प्राण अचानक या छल से अपनी सनक-तले कहीं कामुक लेन-देन की प्रक्रिया में न बह जाये।

श्रीमाँ फ़्रेंच में जो मुझसे बोलीं वह मैं समझ न पाया। बाद में मैंने 'स' से पूछा, फिर उनके वाक्य का अर्थ मेरी समझ में आ गया। मैंने 'स' से कहा कि वह मुझे श्रीमाँ के *Entretiens* (फ़्रेंच के वार्तालाप) पढ़ कर सुनाये ताकि मैं फ़्रेंच के उच्चारण सीख सकूँ और साथ ही फ़्रेंच बोलने का कुछ अभ्यास भी कर लूँ। निश्चय ही मैं 'ब' की फ़्रेंच-कक्षा नहीं छोड़ रहा हूँ, और 'स' के पास बस उन्हीं दिनों जाऊँगा जिन दिनों 'ब' कक्षाएँ नहीं लेता। मैं तो उसी के पास जाना चाहूँगा, लेकिन वैसे ही उसके पास काफ़ी कक्षाएँ हैं। मेरे खयाल से 'स' का उच्चारण काफ़ी अच्छा है—मेरे जैसों के लिए काफ़ी अच्छा जिसे पहले अपने फ़्रेंच के आधे सीखे अंग्रेज़ी उच्चारणों को भूलना होगा!

'स' के उच्चारण काफ़ी अच्छे हैं—इस हिसाब से उसके पास जाकर तुम अधिक लाभान्वित होओगे।

फ़्रेंच सीखने का मेरा उत्साह और जोश मेरे अन्दर की उस ठोस शान्ति के स्थान पर आ बैठा है जिसे मैं कुछ दिनों से महसूस कर रहा था। मेरा भौतिक मन भाषा की तकनीक के इर्द-गिर्द ही घूमता रहता है और इससे बाक़ी सभी चीज़ें उलट-पुलट हो गयी हैं। लेकिन यह ज़रूरी लगता है वरना थोड़े समय में भाषा पर अधिकार नहीं पाया जा सकता। बहरहाल, कभी-कभी गहरे अध्ययन का समय भी होता है जब मन साधना के अनुभवों की बजाय फ़्रेंच सीखने की ओर मुड़ जाता है। या

### बुलेटिन अगस्त २०२१

फिर यह भी एक तरह की साधना ही है!

यह साधना हो सकती है; लेकिन तब अधिक आसानी से जब ठोस शान्ति प्रतिष्ठित हो जाये और प्रत्येक गतिविधि के पीछे सचेतन बनी रहे।

२७ अप्रैल १९३५

किसी-किसी के लिए “नहीं” कहना सीखना बहुत मुश्किल होता है। कभी-कभी जब कोई किसी चीज़ के लिए पूछता है तो व्यक्ति फ़ौरन “हाँ” कर देता है, ख़ासकर अगर वह कोई स्त्री हो और वह उसके अनुकूल हो। प्राण भद्र होना और कुछ प्रसिद्धि पाना चाहता है। लेकिन “नहीं” कहना ज़्यादा लाभकारी और एकदम सही होता है, क्योंकि सहायता करने की इच्छा के पीछे बहुत बार प्राणिक आदान-प्रदान की कामना रहती है। मेरे ख़याल से साधना में एक अवस्था ऐसी आती है जब व्यक्ति के लिए किसी की भी माँग या किसी भी प्राणिक ललक के लिए “नहीं” कहना बहुत ज़रूरी हो जाता है।

हाँ, निश्चित रूप से, जीवन में, और उससे भी बढ़ कर साधना में, “नहीं” कहने की क्षमता रखना एकदम अनिवार्य होता है। व्यक्ति के अन्दर अस्वीकार करने की क्षमता को वाणी में प्रकट करना होता है।

जब और अगर कभी रसायन-शास्त्र प्रगति कर लेगा और अतिभौतिक क्षेत्रों में प्रवेश कर जायेगा, मुझे लगता है कि वह एक एकदम से ख़ाली बोतल में (जिसमें हवा भी न हो) शान्ति उतार लायेगा और किसी-न-किसी तरीक़े से उसका विश्लेषण और संश्लेषण करेगा। जैसा कि मैंने सुना कि कालेलकर एक या दो सालों में इस योग को पकड़ लेंगे और अपने राष्ट्रीय कार्य के लिए इसका उपयोग करेंगे, ये वैज्ञानिक भी—अगर एडिसन की तरह का कोई वैज्ञानिक उतर आये, यानी वह अपने एडीसोनियन सिद्धान्त, अपने तीर या तुक्के वाले सिद्धान्त को लागू करे—‘लगा तो वाह, न लगा तो आह’—तो शायद वे अमृतमयी शान्ति के औद्योगीकरण की भी बात सोचने लगें!

अगर तुम “चैत्य” के बारे में फ़्रांसीसी-प्रेम-कथाएँ पढ़ो तो तुम देखोगे कि उनकी ऊँची से ऊँची कल्पनाओं में सब कुछ मशीनों से ही होता है—लोगों के विचारों को दर्ज करने के लिए मशीनें, किन्हीं “जीवन्त बुद्ध” (अपनी सैकड़ों उपपत्तियों के साथ दिखाये गये बुद्ध) की चैत्य ऊर्जा का संग्रह करने के लिए मशीनें, जिस मशीन में वे अपनी संकल्प-शक्ति रख देते हैं और जब उसे

चलाया जायेगा तो उसमें से लखोखा सिपाही निकल कर एक सम्मोहक ध्यान में निमग्न, युद्ध के लिए कूच कर देंगे और मशीन उन्हें जो-जो मूक सन्देश और आदेश देगी, उसके अनुसार युद्ध का सञ्चालन करते रहेंगे, इत्यादि, इत्यादि। इसलिए तुम्हारे अनुमान गलत नहीं हैं। यह भी एक कारण है कि क्यों कई अमरीकन योग करना चाहते हैं, ताकि वे जिस किसी पेशे को अपनायें, व्यापार हो या कुछ भी हो, उसमें वे सफल बन जायें, शक्तिशाली बन जायें।

*सामान्यतः, जिस-जिस दिन प्रणाम नहीं होता, सवेरे से दोपहर तक का समय मुझे बहुत, बहुत ही लम्बा लगता है। लेकिन आज का दिन मुझे किसी भी दूसरे दिन की तरह लगा। हाँ, इसमें कोई शक नहीं कि काम ही मन को व्यस्त रखता है, लेकिन इसके पीछे ज़रूर कोई और वजह रही होगी कि काम के होते हुए भी जिन दिनों प्रणाम नहीं होता, वे दिन मुझे लम्बे क्यों लगते हैं भला?*

सम्भवतः सामान्य गतिविधि की अनुपस्थिति और बाहरी सम्पर्क के प्रति खुलने के कारण तुम यह अनुभव कर रहे हो—लेकिन अगर चेतना सधी हुई अवस्था में हो तो ऐसा महसूस नहीं होता।

*आपने कहा है, “व्यक्ति को निम्न प्रकृति या उसकी बाधाओं पर ही नहीं गड़े रहना चाहिये, बल्कि अपने चित्त को अनुभूति के सकारात्मक पक्ष की ओर मोड़ देना चाहिये।” लेकिन कभी-कभी ऐसी बाधाएँ आ खड़ी होती हैं जो अनुभूति को उतरने से रोकती हैं। उस हालत में, मुझे लगता है कि पहले हमें उनसे निपटना चाहिये, उन्हें चूर-चूर कर देना चाहिये ताकि रास्ता साफ़ हो जाये। अगर व्यक्ति इस तरह का बीड़ा न उठाये तो वह या तो तमस् में डूब सकता है या फिर जान-बूझकर अपनी निम्न प्रकृति में रमा रह सकता है। मेरे हिसाब से ऐसे मामलों में तो हमें इन बाधाओं पर विशेष ध्यान देकर इन्हें “त्यागने” की आवश्यकता को अपने अन्दर जगाना चाहिये।*

यह एक सामान्य कथन है और सभी सामान्य कथन परिस्थितियों के अनुसार अपना महत्त्व रखते हैं। मेरे कहने का मतलब यह था कि हमें ऐसे लोगों को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिये जो हमेशा बस अपनी कठिनाइयों और दोषों की ही जुगाली करते रहते हैं, क्योंकि इससे वे पिंजड़े में बन्द गोल-गोल चक्कर लगाती हुई गिलहरियों की तरह बन जाते हैं; बादलों से छन कर आये प्रकाश को ज़रा भी ग्रहण किये बिना बस अपनी कठिनाइयों के उसी समान घेरे के चारों तरफ़ घूमते रहते हैं। वाक्य तब अधिक ठीक या सामान्य रूप से प्रयुक्त हो सकता था अगर उसे इस तरह लिखा जाता, “बहुत अधिक रमे रहना” या “केवल उसी में रमे रहना, बस उसी की जुगाली करते रहना”। स्वाभाविक है कि त्यागे बिना कुछ भी हासिल नहीं किया जा



## बुलेटिन अगस्त २०२१

सकता। और कठिन समयों या मुहूर्तों में व्यक्ति कठिनाई पर एकाग्र हो ही जाता है। साथ ही, साधना के प्रारम्भिक स्तरों पर व्यक्ति को सफ़ाई का भी बहुत काम करना होता है ताकि रास्ते पर अधिक सुगमता से चला जा सके।

२९ अप्रैल १९३५

‘म’ ने मुझसे शिकायत की कि “मेरे दोस्त” ने उसके साथ लड़ाई की। मैंने उससे पूछा, “कौन है मेरा दोस्त?” उसने जवाब दिया ‘प’। हे भगवान्! फिर उसने मुझे ‘प’ के बातूनीपन के बारे में बहुत कुछ बताया। उसने कहा कि ‘प’ ‘क’ के साथ रात को ९ से १० तक घूमने जाया करती थी, और ‘न’ को दस बजे उठ कर उसके लिए दरवाज़ा खोलना पड़ता था। अब ‘क’ और दो और महिलाएँ ‘प’ के कमरे में रात दस तक बातें किया करती हैं। मुझे इसका कुछ-कुछ अन्दाज़ था, लेकिन मैं सारे समय हस्तक्षेप तो नहीं कर सकता न? हर एक अपने लिए स्वयं ज़िम्मेदार है।

हाँ, आखिरकार यही उत्तम है। लेकिन क्या ‘प’ ने ‘म’ से लड़ाई की या फिर ‘म’ ने ‘प’ से— यह सापेक्षता का प्रश्न है, इसको सुलझाना आसान नहीं है, क्योंकि ‘म’ ने इसे चित्रित किया है।

३० अप्रैल १९३५

श्रीअरविन्द